[2007] 4 उम. नि. प. 31

राजेन्द्र सिंह राणा और अन्य

बनाम

स्वामी प्रसाद मौर्य और अन्य

14 फरवरी, 2007

मुख्य न्यायमूर्ति के. जी. बालकृष्णन्, न्यायमूर्ति एच. के. सेमा, न्यायमूर्ति ए. आर. लक्ष्मणन्, न्यायमूर्ति पी. के. बालसुब्रमह्ण्यम् और न्यायमूर्ति डी. के. जैन

संविधान, 1950 – अनुच्छेद 191(2), दसवीं अनुसूची, पैरा 2 – दल परिवर्तन के आधार पर निरर्हता – स्वेच्छा से सदस्यता छोड़ना – विधानसभा सदस्यों द्वारा राज्यपाल को ऐसा पत्र देने की कार्रवाई जिसमें उनसे विपक्षी दल के नेता को सरकार बनाने के लिए आमंत्रित करने का अनुरोध किया गया है, उनके द्वारा स्वेच्छा से अपने दल की सदस्यता छोड़ देने की कोटि में आती है और चूंकि दल परिबर्तन करने वाले सदस्यों ने विभाजन संबंधी अपनी प्रतिरक्षा को साबित नहीं किया है इसलिए वे राज्यपाल को पत्र देने की तारीख से दल परिवर्तन के आधार पर निरर्हित समझे जाएंगे ।

संविधान, 1950 – अनुच्छेद 136, 226, 191(2), दसवीं अनुसूची, पैरा 2 और 6 – न्यायिक पुनर्विलोकन – दल परिवर्तन के आधार पर विधायकों को निरर्हित करने संबंधी अध्यक्ष का विनिश्चय – अध्यक्ष द्वारा निरर्हता के प्रश्न को अनिर्णीत छोड़कर पहले विभाजन के प्रश्न को विनिश्चित करना – चूंकि अध्यक्ष द्वारा विभाजन को मान्यता प्रदान करने वाला विनिश्चय इस संबंध में निष्कर्ष निकाले बिना किया गया था कि विभाजन को साबित कर दिया गया है इसलिए अध्यक्ष के विनिश्चय में सीमित न्यायिक पुनर्विलोकन के अधीन भी हस्तक्षेप किया जा सकता है ।

संविधान, 1950 – अनुच्छेद 191(2), दसवीं अनुसूची, पैरा 2,3,4. और 6 – दल परिवर्तन के आधार पर विधायक की निरर्हता – अध्यक्ष द्वारा विनिश्चय करने की शक्ति की परिधि – अध्यक्ष को विभाजन या विलय के प्रश्न को पृथक्तः विनिश्चित करने की शक्ति नहीं है और विभाजन संबंधी प्रश्न के अवधारण को निरर्हता के प्रश्न से अलग नहीं माना जा सकता ।

संविधान, 1950 – अनुच्छेद 191(1), दसवीं अनुसूची, पैरा 2 – दल परिवर्तन के आधार पर निरर्हता – सुसंगत तारीख – दल परिवर्तन के आधार पर निरर्हता संबंधी प्रश्न को विनिश्चित करने के लिए सुसंगत तारीख वह होगी जिस तारीख को सदस्य स्वेच्छा से अपनी सदस्यता छोड़ देता है या दल द्वारा जारी की गई व्हिप की अवंज्ञा करता है ।

संविधान, 1950 – अनुच्छेद 191(1), दसवीं अनुसूची, पैरा 2 और पैरा 3 – दल परिवर्तन के आधार पर विधायकों को निरर्हित करना – दल में विभाजन होने संबंधी प्रतिरक्षा – केवल विभाजन का दावा करना ही पर्याप्त नहीं होता है बल्कि विभाजन को कम से कम प्रथमदृष्टया सामग्री के आधार पर साबित अवश्य किया जाना चाहिए ।

उत्तर प्रदेश राज्य की 14वीं विधानसभा के गठन के लिए निर्वाचन फरवरी, 2002 में आयोजित किए गए । चूंकि किसी भी राजनीतिक दल को अपेक्षित बहुमत प्राप्त नहीं हुआ था इसलिए एक सांझा सरकार बनाई गई जिसका नेतृत्व बहुजन समाज पार्टी (जिसे इसमें इसके पश्चात् 'बी. एस. पी.' कहा गया है) की नेता ने किया । बी. एस. पी. स्वीकृत रूप से एक मान्यताप्राप्त राष्ट्रीय दल था । सरकार का गठन मई, 2002 में किया गया था । ऐसा कहा जाता है कि मंत्रिमंडल ने तारीख 25 अगस्त, 2003 को त्यागपत्र दे दिया और सर्वसम्मति से विधानसभा के विघटन की सिफारिश करने का विनिश्चय किया । प्रकटतः, विधानसभा के विघटन की सिफारिश करने वाले मंत्रिमंडल के विनिश्चय के पश्चात् और मंत्रिमंडल द्वारा वास्तव में त्यागपत्र दिए जाने से पूर्व, समाजवादी पार्टी के नेता ने राज्यपाल के समक्ष सरकार बनाने का अपना दावा पेश किया । तारीख 27 अगस्त, 2003 को विधानसभा में बी. एस. पी. के 13 सदस्य राज्यपाल से मिले और उनसे यह अनुरोध किया कि समाजवादी पार्टी के नेता को सरकार बनाने के लिए आमंत्रित किया जाए । राज्यपाल ने विधानसभा के विघटन के लिए मंत्रिमंडल की सिफारिश को स्वीकार नहीं किया । राज्यपाल ने तारीख 29 अगस्त, 2003 को समाजवादी पार्टी के नेता को सरकार बनाने के लिए आमंत्रित किया और उसे विधानसभा में अपना बहुमत साबित करने के लिए दो सप्ताह का समय दिया । तारीख 4 सितम्बर, 2003 को बी. एस. पी. विधायक दल के नेता ने भारत के संविधान की दसवीं अनुसूची के साथ पठित अनुच्छेद 191 के निबंधनानुसार यह प्रार्थना करते हुए अध्यक्ष के समक्ष एक याचिका फाइल की कि बी. एस. पी. के उन 13 विधायकों को, जिन्होंने 27 अगस्त, 2003 को

राज्यपाल के समक्ष समाजवादी पार्टी के नेता का समर्थन करने की घोषणा की थी, इस आधार पर संविधान की दसवीं अनुसूची के पैरा 2 के निबंधनानुसार निरर्हित किया जाए कि उन्होंने अपने मूल राजनीतिक दल बी. एस. पी. की अपनी सदस्यता स्वेच्छा से छोड़ दी है । तारीख 5 सितम्बर, 2003 को बी. एस. पी. की ओर से विधानसभा अध्यक्ष के समक्ष एक केवियट भी फाइल किया गया था जिसमें अध्यक्ष से यह प्रार्थना की गई कि यदि उन सदस्यों द्वारा जिन्होंने पार्टी छोड़ी है, विभाजन होने का कोई दावा किया जाता है तो बी. एस. पी. के प्रतिनिधि को भी सुना जाए । तारीख 6 सितम्बर, 2003 को 37 विधायकों द्वारा अध्यक्ष से यह प्रार्थना की गई कि इस आधार पर बी. एस. पी. के विभाजन को मान्यता प्रदान की जाए कि 109 विधायकों वाली बी. एस. पी. के एक-तिहाई सदस्य 26 अगस्त, 2003 को लखनऊ के दारूलशफा स्थित एम. एल. ए. होस्टल में आयोजित एक बैठक के अनुसरण में इस दल से अलग हो गए हैं । अध्यक्ष ने विभाजन को मान्यता देने संबंधी उक्त आवेदन पर उसी शाम कार्यवाही आरंभ की । उसने यह सत्यापित किया कि जिन 37 सदस्यों ने उसे प्रस्तुत किए गए आवेदन पर हस्ताक्षर किए थे, वास्तव में हस्ताक्षर किए थे चूंकि वे उसके समक्ष व्यक्तिगत रूप से उपस्थित हुए थे । बी. एस. पी. विधायक दल के नेता के आक्षेपों को नामंजूर करते हुए इस गणित के आधार पर बी. एस. पी. में विभाजन को स्वीकार करते हुए एक आदेश पारित किया कि 109 विधायकों में से 37 विधायक विधायक दल के सदस्यों का एक-तिहाई गठित करते हैं । इस समूह को लोकतांत्रिक बहुजन दल के रूप में जाना जाने लगा । किन्तु उक्त दल अल्प काल तक रहा क्योंकि अध्यक्ष ने थोड़े समय पश्चात्, 6 सितम्बर, 2003 को ही यह स्वीकार कर लिया कि उक्त दल का समाजवादी पार्टी में विलय हो गया है । यह उल्लेख करना सुसंगत है कि अध्यक्ष ने तारीख 6 सितम्बर, 2003 के अपने आदेश में बी. एस. पी. द्वारा किए गए उस आवेदन को विनिश्चित नहीं किया जिसमें उन 13 विधायकों को, जो कि अध्यक्ष के समक्ष उपस्थित होने वाले 37 विधायकों में शामिल थे, निरर्हित करने की ईप्सा की गई थी तथा उस आवेदन पर विनिश्चय स्थगित कर दिया । अध्यक्ष के उक्त आदेश को चुनौती देते हुए उच्च न्यायालय में रिट याचिका फाइल की गई । उच्च न्यायालय में इस रिट याचिका पर सुनवाई तो प्रारंभ हुई किन्तु किन्हीं कारणों से इसकी सुनवाई बार-बार अगली तारीखों तक के लिए स्थगित की जाती रही । इसी बीच अध्यक्ष ने बी. एस. पी. के 13 सदस्यों को निरर्हित करने संबंधी याचिका की सुनवाई इस आधार पर

स्थगित कर दी कि उच्च न्यायालय में लंबित रिट याचिका के विनिश्चय की प्रतीक्षा करना न्याय के हित में होगा । उच्च न्यायालय में अनेक स्थगनों के पश्चात्, जो कि मुख्यतः प्रत्यर्थियों के अनुरोध पर किए गए थे, सुनवाई आरंभ हुई । किन्तु इसी बीच अध्यक्ष ने बी. एस. पी. के 13 विधायकों को निरर्हित करने की ईप्सा करते हुए की गई याचिका खारिज कर दी जबकि अध्यक्ष ने इससे पहले इस याचिका को उच्च न्यायालय द्वारा विनिश्चय किए जाने तक के लिए स्थगित कर दिया था । इसके पश्चात्, प्रत्यर्थियों ने अध्यक्ष के उक्त विनिश्चय के आधार पर उच्च न्यायालय से रिट याचिका खारिज करने की ईप्सा की । उच्च न्यायालय के अपीलाधीन निर्णय के अनुसार, रिट याचिका विद्वान मुख्य न्यायमूर्ति द्वारा खारिज कर दी गई थी जबकि अन्य दो विद्वान न्यायाधीशों ने अध्यक्ष के आदेशों को अभिखंडित कर दिया था और अध्यक्ष को यह निदेश दिया कि विशेष रूप से रिट याची द्वारा 13 विधायकों को निरर्हित करने के लिए फाइल की गई याचिका के प्रति निर्देश से मामले पर पुनर्विचार किया जाए और समुचित आदेश पारित किया जाए । इससे व्यथित होकर प्रस्तुत अपीलें फाइल की गई हैं । उच्चतम न्यायालय द्वारा अपीलें खारिज करते हुए,

अभिनिर्धारित – संविधान (बावनवां संशोधन) अधिनियम, 1985 द्वारा अनुच्छेद 102 और अनुच्छेद 191 में उप-अनुच्छेद पुरःस्थापित करते हुए उन अनुच्छेदों में संशोधन किया गया था और दल परिवर्तन के आधार पर निरर्हता के बारे में उपबंधों को पुरःस्थापित करते हुए दसवीं अनुसूची जोड़ी गई थी । वे दल परिवर्तन द्वारा लोकतंत्र को होने वाले खतरे को दूर करने के लिए पुरःस्थापित किए गए थे । दल परिवर्तन के आधार पर संसद् की या विधानसभा की सदस्यता से निरर्हता के लिए एक आधार पुरःस्थापित किया गया था । संविधान के अनुच्छेद 102 के उप-अनुच्छेद (2) और अनुच्छेद 191 पुरःस्थापित किए जाने के संदर्भ में, संविधान की दसवीं अनुसूची के अधीन की जाने वाली कार्यवाही यह विनिश्चित करने वाली कार्यवाही होती है कि क्या कोई सदस्य दल परिवर्तन के आधार पर संसद् या विधानसभा के सदस्य के रूप में अपनी स्थिति धारित करने के लिए निरर्हित हो गया है अथवा नहीं । दसवीं अनुसूची का अर्थान्वयन संविधान के अनुच्छेद 102 और अनुच्छेद 191 और उन अनुच्छेदों के उद्देश्य को अलग रखकर नहीं किया जा सकता । दल परिवर्तन को एक निरर्हता के रूप में जोड़ा गया है और दसवीं अनुसूची में दल परिवर्तन के आधार पर निरर्हता के बारे में उपबंध अंतर्विष्ट हैं । दसवीं अनुसूची के अधीन कार्यवाही

अध्यक्ष के समक्ष इस संबंध में शिकायत किए जाने पर आरंभ होती है कि किसी राजनीतिक दल के कतिपय सदस्य दल परिवर्तन के आधार पर निरर्हताग्रस्त हो गए हैं । इस प्रकार किए गए दावे का विरोध करने के लिए संसद् या विधानसभा के उन सदस्यों के पास, जिनके विरुद्ध कार्यवाहियां आरंभ की जाती हैं, यह दर्शित करने का अधिकार होता है कि मूल राजनीतिक दल में विभाजन हो गया है और वे उस विधायक दल के सदस्यों का एक-तिहाई गठित करते हैं या यह कि उस दल का एक अन्य राजनीतिक दल में विलय हो गया है और इसलिए पैरा 2 लागू नहीं होता है । अनुच्छेद 102 और अनुच्छेद 191 तथा दसवीं अनुसूची के स्कीम के आधार पर विभाजन या विलय के प्रश्न के अवधारण को अध्यक्ष के समक्ष उस समावेदन से अलग नहीं रखा जा सकता जिसमें संबंधित सदस्य या सदस्यों की निरर्हता की ईप्सा की जाती है । इसलिए, इस तर्क को स्वीकार करना संभव नहीं है कि संविधान की दसवीं अनुसूची के अधीन अध्यक्ष के पास यह विनिश्चित करने की स्वतंत्र शक्ति है कि किसी राजनीतिक दल में संविधान की दसवीं अनुसूची के पैरा 3 और पैरा 4 द्वारा यथा-अनुध्यात कोई विभाजन या विलय हुआ है । संसद् या विधानसभा में किसी पृथक् समूह को मान्यता प्रदान करने की शक्ति सदन के कामकाज के नियमों के आधार पर अध्यक्ष में निहित है । किन्तु यह ऐसा कहने से भिन्न है कि उसके द्वारा अवधारित किए जाने वाले इस दावे के अतिरिक्त कि कोई सदस्य या कई सदस्य दल परिवर्तन के कारण निरर्हताग्रस्त हो गए हैं, उसे संविधान की दसवीं अनुसूची के अधीन शक्ति उपलब्ध है । इस सीमा तक, प्रस्तुत मामले में अध्यक्ष के विनिश्चय को संविधान की दसवीं अनुसूची के निबंधनों के अनुसार आदेश नहीं समझा जा सकता । अध्यक्ष उस प्रश्न पर जिसे विनिश्चित करने की उससे अपेक्षा की गई थी, विनिश्चय को मुल्तवी करके उस प्रश्न का विनिश्चय करने में असफल रहा है । बी. एस. पी. के विद्वान काउन्सेल की इस दलील में कुछ गुणागुण है कि अध्यक्ष के आदेश को संविधान की दसवीं अनुसूची के पैरा 6(1) के निबंधनों के अनुसार पूर्ण उन्मुक्ति प्राप्त नहीं है और यह कि यदि उसे पूर्ण उन्मुक्ति प्राप्त थी तो भी प्रश्नगत आदेश में हस्तक्षेप करने की अपेक्षा करने के लिए इस न्यायालय द्वारा मान्यताप्राप्त न्यायिक पुनर्विलोकन की शक्ति पर्याप्त है । (पैरा 22 और 25)

संविधान की दसवीं अनुसूची के अधीन संपूर्ण कार्यवाही सदन के किसी सदस्य की निरर्हता के भागस्वरूप आरंभ की जाती है या आरंभ हो

जाती है । वह निरर्हता दल परिवर्तन के कारण होती है । विभिन्न विधानमंडलों द्वारा, जिसमें उत्तर प्रदेश विधानमंडल भी है, विहित नियमों में अध्यक्ष को तब आवेदन करना अनुध्यात है जब इस संबंध में शिकायत हो कि कुछ सदस्यों ने दल में अपनी सदस्यता स्वेच्छा से छोड़ दी है । दसवीं अनुसूची के निबंधनानुसार केवल तभी अध्यक्ष से यह अपेक्षा की जाती है कि वह अपने समक्ष उठाए गए निरर्हता के प्रश्न को दसवीं अनुसूची के पैरा 6 के संदर्भ में विनिश्चित करे । इस दावे से निरपेक्ष रहते हुए कि किसी व्यक्ति को निरर्हित किया जाना है, दसवीं अनुसूची या उसके अधीन बनाए गए नियमों की स्कीम में यह अनुध्यात नहीं है कि अध्यक्ष इस संबंध में कोई स्वतंत्र जांच आरंभ करे कि क्या किसी राजनीतिक दल में कोई विभाजन हुआ है या कोई विलय हुआ है । इसलिए, अनुच्छेद 102 और अनुच्छेद 191 तथा संविधान की दसवीं अनुसूची की स्कीम के संदर्भ में अध्यक्ष दसवीं अनुसूची के पैरा 2 के निबंधनों के अनुसार उसके समक्ष निरर्हता संबंधी दावा किए जाने पर ही कार्यवाही करता है । ऐसे किसी मामले में जिसमें किसी विधायक दल या विधायक दल के नेता द्वारा अध्यक्ष के समक्ष इस बारे में समावेदन किया जाता है कि कतिपय व्यक्तियों को इस आधार पर निरर्हित घोषित किया जाए कि उन्होंने दल परिवर्तन कर लिया है, वहां वे निश्चित रूप से यह अभिवाक् करने के लिए स्वतंत्र होंगे कि वे इस तथ्य के आधार पर दल परिवर्तन के लिए दोषी नहीं है कि मूल राजनीतिक दल में विभाजन हो गया है और वे विधायकों की अपेक्षित संख्या गठित करते हैं या कोई विलय हो गया है । उस संदर्भ में, अध्यक्ष यह नहीं कह सकता कि वह पहले एक प्राधिकारी के रूप इस बात का विनिश्चय करेगा कि क्या कोई विभाजन या विलय हुआ था और उसके बाद अधिकरण के रूप में कार्य करते हुए न्यायिक अधिनिर्णय के तौर पर इस प्रश्न का विनिश्चय करेगा कि क्या सदस्य निरर्हताग्रस्त हो गए हैं । यह किसी सदस्य या किन्हीं सदस्यों को निरर्हित करने संबंधी दावे पर विचार करते समय उस प्रश्न को न केवल शिकायतकर्ता द्वारा किए गए अभिवाक् के संदर्भ में बल्कि उन व्यक्तियों द्वारा किए गए अभिवाक् के संदर्भ में भी, जिन्हें निरर्हित करने की ईप्सा की जाती है, उस प्रश्न को विनिश्चित करने के लिए अधिकरण के रूप में उसकी अधिकारिता का भाग है कि वे दल में विभाजन के आधार पर या विलय को ध्यान में रखते हुए निरर्हता से ग्रस्त नहीं हो गए हैं । (पैरा 26 और 27)

संविधान की दसवीं अनुसूची के अधीन अध्यक्ष से पहले अनुसूची के पैरा 6 के निबंधनों के अनुसार निरर्हता के प्रश्न को विनिश्चित करने के संबंध में अधिकारिता अर्जित किए बिना अनुसूची के पैरा 3 और पैरा 4 के अधीन मात्र कोई दावा ग्रहण करने की प्रत्याशा नहीं की जाती है । दसवीं अनुसूची में ऐसी कोई शक्ति नहीं पाई जा सकती, जिसका प्रयोग वह अन्यथा स्वतंत्र रूप से किसी समूह या विलय को मान्यता प्रदान करने के लिए कर सकेगा । दसवीं अनुसूची के अधीन ऐसा करने की शक्ति केवल तभी प्रोद्भूत होती है जब उससे उस अनुसूची के पैरा 6 में निर्दिष्ट प्रश्न को विनिश्चित करने की अपेक्षा की जाती है । (पैरा 28)

अध्यक्ष की ओर से ऐसे आवेदन को, जिसमें निरर्हता के लिए ईप्सा की गई है, विनिश्चित करने में हुई इस असफलता के बारे में यह नहीं कहा जा सकता कि वह मात्र प्रक्रिया के अंतर्गत हुई है । यह संविधान के अनुच्छेद 102 और अनुच्छेद 191 के संदर्भ में पठित दसवीं अनुसूची द्वारा अनुध्यात अधिनिर्णय की सांविधानिक स्कीम के ही विरुद्ध है । यह उस निमित्त विरचित नियमों और उस प्रक्रिया के भी विरुद्ध है जिसका अनुपालन करने की उससे प्रत्याशा थी । इसलिए, 37 विधायकों द्वारा दिए गए इस तर्क को स्वीकार करना संभव नहीं है कि अध्यक्ष द्वारा निरर्हता संबंधी याचिका का विनिश्चय कम से कम उनके द्वारा विभाजन को मान्यता देने के लिए फाइल की गई याचिका के साथ-साथ करने में हुई असफलता मात्र प्रक्रियात्मक अनियमितता है । इसलिए वह अधिकारिता संबंधी अवैधता है, एक ऐसी अवैधता जो अध्यक्ष द्वारा उसके समक्ष प्रस्तुत किए गए विभाजन के प्रश्न के संबंध में किए गए तथाकथित विनिश्चय की जड़ तक जाती है । (पैरा 29)

यह सही है कि दसवीं अनुसूची और संविधान के अनुच्छेद 102 के उप-अनुच्छेद (2) और अनुच्छेद 191 को अधिनियमित करने का आशय सामूहिक विसम्मति को दबाना नहीं है । किन्तु इसके साथ-साथ यह स्पष्ट है कि इनका उद्देश्य दल परिवर्तन को हतोत्साहित करना है जिसने लोकतंत्र के मूल आधार को कमजोर करके कष्टदायी आयाम धारित कर लिया है । इसलिए दसवीं अनुसूची के पैरा 3 और पैरा 4 की सन्निहिति में पैरा 2 का सोद्देश्य निर्वचन किए जाने की आवश्यकता है । एक बात तो स्पष्ट है कि दल परिवर्तन किसी सदस्य को सदन से निरर्हित करने के लिए एक आधार है । वह इस निरर्हता से तब ग्रस्त हो जाता है जब उसने अपने मूल राजनीतिक दल, अर्थात् उस दल की अपनी सदस्यता स्वेच्छा से

छोड़ दी है जिसके टिकट पर वह सदन के लिए निर्वाचित हुआ था । किसी व्हिप की अवज्ञा करने की दशा में संबंधित दल को यह विकल्प दिया जाता है कि वह या तो अवज्ञा को माफ करे या संबंधित सदस्य को निरर्हित करने की ईप्सा करे । किन्तु माफ करने संबंधी विनिश्चय व्हिप की अवज्ञा किए जाने के 15 दिन के भीतर अवश्य किया जाना चाहिए । इस पहलू का भी यह दलील देने के लिए अवलंब लिया गया कि इस प्रश्न को अवधारित करने का सुसंगत समय वह होता है जब कि अध्यक्ष निरर्हता संबंधी अभिवाक् पर वास्तव में कोई विनिश्चय करता है । (पैरा 33)

निरर्हता की कार्यवाही किसी सदस्य द्वारा किसी राजनीतिक दल की अपनी सदस्यता स्वेच्छा से छोड़ देने पर या उसे जारी की गई व्हिप की अवज्ञा करने के समय से उद्भूत होती है । इसलिए जो कार्य दसवीं अनुसूची के पैरा 2 के निबंधनों के अनुसार निरर्हता गठित करता है वह सदस्यता स्वेच्छा से छोड़ देने या व्हिप की अवज्ञा करने का कार्य है । इस तथ्य के आधार पर कि स्वेच्छा से सदस्यता छोड़ देने की दशा में अध्यक्ष द्वारा उस संबंध में विनिश्चय पश्चात्वर्ती समय पर किया जा सकता है, विधायक के कार्य द्वारा उसके निरर्हता से ग्रस्त होने को मुल्तवी नहीं किया जा सकता और न ही वह ऐसा करता है । इसी प्रकार, यह तथ्य भी कि दल किसी व्हिप की अवज्ञा को 15 दिन के भीतर माफ कर सकेगा या यह कि अध्यक्ष उन मामलों में उसके पश्चात् ही विनिश्चय करता है, निरर्हता के समय को उस समय से परे नहीं ले जा सकता जब व्हिप की अवज्ञा की जाती है । इसलिए बावनवें संशोधन द्वारा जिस उद्देश्य को पूरा करने की ईप्सा की गई है उसकी पृष्ठभूमि में और दसवीं अनुसूची के अन्य पैराओं के प्रति निर्देश करते हुए उसके पैरा 2 का सही अर्थान्वयन करने पर जो स्थिति उद्भूत होती है वह यह कि अध्यक्ष को निरर्हता के प्रश्न का विनिश्चय उस तारीख के प्रति निर्देश से करना होता है जिस तारीख को सदस्य अपनी सदस्यता स्वेच्छा से छोड़ देता है या व्हिप की अवज्ञा करता है । यह वास्तव में कार्योत्तर विनिश्चय है । इस तथ्य के परिणामस्वरूप कि पैरा 6 के निबंधनानुसार प्रश्न का विनिश्चय अध्यक्ष या सभापति द्वारा किया जाना होता है, यह निष्कर्ष नहीं निकलता कि इस प्रश्न का अवधारण अध्यक्ष के विनिश्चय की तारीख के प्रति निर्देश से ही करना होता है । उस प्रकृति का निर्वचन निरर्हता को अनिर्धारणीय समय तक और विनिश्चय करने वाले प्राधिकारी की मर्जी पर छोड़ देगा । इससे विधि को अधिनियमित करने का उद्देश्य ही विफल हो जाएगा । जहां तक संभव हो

ऐसे निर्वचन से बचना चाहिए । इसलिए, हमारी यह राय है कि इस दलील को स्वीकार नहीं किया जा सकता कि अध्यक्ष के विनिश्चय पर ही निरर्हता उपगत होती है । इससे यह अभिप्रेत होगा कि विद्वान मुख्य न्यायमूर्ति ने जिसे द्रुत प्रभाव कहा है उसे अनदेखा करना होगा और प्रश्न का विनिश्चय उस तारीख के प्रति निर्देश से करना होगा जिस तारीख को अभिकथित रूप से विधायक दल की सदस्यता स्वेच्छा से छोड़ दी जाती है । (पैरा 34)

इस प्रकार, यह स्पष्ट है कि यह दर्शित करने के अतिरिक्त कि विधायक दल के एक-तिहाई सदस्य दल से अलग हो गए हैं, मूल दल में विभाजन का दावा करना ही पर्याप्त नहीं है बल्कि उसे कम से कम प्रथमदृष्टया साबित करना भी आवश्यक है । जिन सदस्यों ने दल छोड़ दिया है उन्हें प्रथमदृष्टया सुसंगत सामग्री द्वारा यह दर्शित करना होगा कि मूल दल में कोई विभाजन हुआ है । (पैरा 37)

इस तर्क को स्वीकार करना पैरा 3 के विनिर्दिष्ट निबंधनों के प्रतिकूल होगा कि विधायकों की दो प्रास्थितियां हैं, एक मूल राजनीतिक दल के सदस्यों के रूप में और दूसरी विधानमंडल के सदस्यों के रूप में और मूल दल में विभाजन संबंधी निष्कर्ष निकालने या विभाजन की अभिधारणा करने के लिए यह दर्शित करना पर्याप्त होगा कि एक-तिहाई विधायकों ने पृथक् समूह बना लिया है । उस पैरा में दो अपेक्षाओं का वर्णन है, एक यह कि मूल दल में विभाजन हुआ है तथा दूसरी यह कि एक-तिहाई विधायकों का समूह विधायक दल से अलग हो गया है । दो प्रास्थितियों के सिद्धांत को स्वीकार करने से पैरा 3 का एक भाग अनावश्यक या निष्प्रभावी हो जाएगा । जहां तक संभव हो, उस प्रकृति के निर्वचन से बचना होगा । ऐसा निर्वचन करना संदर्भ में अपेक्षित नहीं है । यह प्रकल्पित करना भी अनुज्ञेय नहीं है कि संसद् ने जिन शब्दों का प्रयोग किया है वे अनावश्यक या अर्थहीन हैं । इसलिए, इस अभिवाक् का खंडन किया जाता है कि मूल राजनीतिक दल में विभाजन को पृथक् से साबित करना आवश्यक नहीं है यदि यह दर्शित कर दिया जाता है कि विधायक दल में विभाजन हो गया है । (पैरा 38)

प्रस्तुत मामले में यह स्पष्ट है कि अध्यक्ष ने मूल आदेश में निरर्हता के प्रश्न को अविनिश्चित छोड़ दिया । इस प्रकार वह दसवीं अनुसूची के पैरा 6 द्वारा उसे प्रदत्त की गई अधिकारिता का प्रयोग करने में असफल रहा । अधिकारिता का प्रयोग करने में हुई इस असफलता को अनुसूची के पैरा 6 के संरक्षण के अंतर्गत नहीं माना जा सकता । उसने विभाजन के बारे में

किए गए मात्र दावे के आधार पर विभाजन को स्वीकार करने की भी कार्यवाही की । उसने इस संबंध में कोई निष्कर्ष नहीं निकाला कि क्या मूल राजनीतिक दल में विभाजन को प्रथमदृष्टया साबित किया गया था अथवा नहीं । इसलिए, अध्यक्ष ने ऐसी गलती की है जो मामले की जड़ तक जाती है या ऐसी गलती की है जो कि इतनी मूलभूत है कि सीमित न्यायिक पुनर्विलोकन के अधीन भी अध्यक्ष के आदेश में हस्तक्षेप किया जाना चाहिए । (पैरा 40)

स्पष्टतः, अपने मूल दल के मुख्यमंत्री की इस सलाह के विरुद्ध कि विधानसभा का विघटन किया जाए, विरोधी दल के महासचिव के साथ राज्यपाल से मिलने और राज्यपाल से यह अनुरोध करते हुए कि उस विपक्षी दल के नेता को सरकार बनाने के लिए आमंत्रित किया जाए, पत्र देने वाले आचरण से यह अप्रतिरोध्य अनुमान निकलता है कि 13 सदस्यों ने स्पष्टतः बी. एस. पी. की अपनी सदस्यता छोड़ दी है । इस बात का पता लगाने के लिए और किसी साक्ष्य या जांच की आवश्यकता नहीं है कि उनकी कार्रवाई दसवीं अनुसूची के पैरा 2(1)(क) के अंतर्गत आती है । (पैरा 49)

इस निष्कर्ष को ध्यान में रखते हुए कि न केवल यह दर्शित करना आवश्यक है कि 37 विधायक पृथक् हो गए थे बल्कि यह दर्शित करना भी आवश्यक है कि मूल राजनीतिक दल में विभाजन हुआ था, उपर्युक्त निष्कर्ष के परिणामस्वरूप आवश्यक रूप से यह निष्कर्ष निकलता है कि उन 13 विधायकों ने, जिन्हें निरर्हित करने की ईप्सा की गई है, अपनी प्रतिरक्षा साबित नहीं की थी या दसवीं अनुसूची के पैरा 3 के आधार पर पैरा 2 के अधीन दल परिवर्तन के आरोप का उत्तर नहीं दिया था । इसलिए 13 विधायक 27 अगस्त, 2003 से निरर्हित माने जाते हैं । उनके द्वारा राज्यपाल को मात्र यह पत्र देना, जिसमें उससे यह अनुरोध किया गया कि विपक्षी दल के नेता को सरकार बनाने के लिए आमंत्रित किया जाए, दसवीं अनुसूची के पैरा 2 के अर्थान्तर्गत मूल राजनीतिक दल की अपनी सदस्यता स्वेच्छा से छोड़ देने की कोटि में आता है । यदि ऐसा है, तो यह अप्रतिरोध्य निष्कर्ष निकलता है कि बी. एस. पी. के वे 13 सदस्य, जो तारीख 27 अगस्त, 2003 को राज्यपाल से मिले थे और जो प्रत्यर्थी द्वारा फाइल की गई रिट याचिका में प्रत्यर्थी सं. 2, 3, 4, 5, 6, 9, 10, 14, 16,19, 20, 21 और 37 हैं, संविधान की दसवीं अनुसूची के पैरा 2 के साथ पठित उसके अनुच्छेद 191(2) के निबंधनों के अनुसार 27 अगस्त,

2003 से निरर्हित हो जाते हैं । यदि ऐसा है, तो खंड न्यायपीठ के बहुमत के विनिश्चय को उपांतरित करके 37 विधायकों द्वारा फाइल की गई अपीलों को खारिज करने के साथ-साथ रिट याची द्वारा फाइल की गई अपील मंजूर की जानी चाहिए । (पैरा 53)

निर्दिष्ट निर्णय

		पैरा
[2007]	जे. टी. 2007 (2) एस. सी. 1 : **राजा राम पाल** बनाम **माननीय अध्यक्ष लोक सभा और अन्य;**	39
[2006]	(2006) 13 स्केल 335 : **जगजीत सिंह** बनाम **हरियाणा राज्य ;**	29,36,37,40,46
[1994]	[1994] 1 एस. सी. आर. 754 : **रवि एस. नायक** बनाम **भारत संघ ;**	19,22,37,40,48
[1992]	[1992] 1 एस. सी. आर. 686 : **किहोतो होलोहन** बनाम **ज़ाचिल्लु और अन्य;**	13,22,25,27, 29,32,39
[1987]	ए. आई. आर. 1987 पंजाब और हरियाणा 263 : **प्रकाश सिंह बादल** बनाम **भारत संघ और अन्य ।**	28

अपीली (सिविल) अधिकारिता : 2007 की सिविल अपील सं. 765. (इसके साथ 2007 की सिविल अपील सं. 766, 767, 768, 769, 770 और 771 भी सुनी गई ।)

2003 की रिट याचिका सं. 5085(एम/बी) में लखनऊ स्थित इलाहाबाद उच्च न्यायालय की लखनऊ न्यायपीठ के तारीख 28 फरवरी, 2006 के अंतिम निर्णय और आदेश के विरुद्ध अपील ।

उपस्थित पक्षकारों की ओर से सर्वश्री एस. एम. ए. काज़मी, महाधिवक्ता, उत्तर प्रदेश, अशोक देसाई, डा. राजीव धवन, मुकुल रोहतगी, राकेश द्विवेदी, यू. यू. ललित, हरीश एन. साल्वे, एस. सी. मिश्र, अल्ताफ अहमद, के. के. लाहिरी,

इजाज़ मकबूल, विकास सिंह, (सुश्री) तरुणा सिंह, अभिजीत सिन्हा, विश्वजीत सिंह, (सुश्री) निरंजना सिंह, सिद्धार्थ सेंगर, गौरव भाटिया, अभिषेक चौधरी, (सुश्री) कमला सिन्हा, आदर्श उपाध्याय, सुब्रमण्यम् प्रसाद, पी. एच. पारेख, समीर पारेख, ई. आर. कुमार, (श्रीमती) सोनाली बसु पारेख, अरुण फ्रांसिस, कुस्ती चतुर्वेदी (मैसर्स पी. एच. पारेख एंड कंपनी की ओर से), शैल कुमार द्विवेदी, पी. एन. गुप्ता, जी. वी. राव, एस. डब्ल्यू. ए. कादरी, राजीव दूबे, कामलेन्द्र मिश्र, ए. रघुनाथ, सूर्य कांत, लक्ष्मी रमण सिंह, सैयद अली अहमद, सैयद तनवीर अहमद, एस. एस. बंधोपद्याय, मोहम्मद शाह नवाज़ हसन, (कुमारी) शबाना सैफी और मोहन पांडे

न्यायालय का निर्णय न्यायमूर्ति पी. के. बालसुब्रह्मणयम् ने दिया ।

न्या. बालसुब्रह्मणयम् – इजाजत दी जाती है ।

2. उत्तर प्रदेश राज्य की 14वीं विधानसभा के गठन के लिए निर्वाचन फरवरी, 2002 में आयोजित किए गए । चूंकि किसी भी राजनीतिक दल को अपेक्षित बहुमत प्राप्त नहीं हुआ था इसलिए एक सांझा सरकार बनाई गई जिसका नेतृत्व बहुजन समाज पार्टी (जिसे इसमें इसके पश्चात् 'बी. एस. पी.' कहा गया है) की नेता सुश्री मायावती ने किया । बी. एस. पी. स्वीकृत रूप से एक मान्यताप्राप्त राष्ट्रीय दल था । सरकार का गठन मई, 2002 में किया गया था । ऐसा कहा जाता है कि मंत्रिमंडल ने तारीख 25 अगस्त, 2003 को सर्वसम्मति से विधानसभा के विघटन की सिफारिश करने का विनिश्चय किया । इसी आधार पर सुश्री मायावती ने तारीख 26 अगस्त, 2003 को अपने मंत्रिमंडल का त्यागपत्र प्रस्तुत किया । प्रकटतः, विधानसभा के विघटन की सिफारिश करने वाले मंत्रिमंडल के विनिश्चय के पश्चात् और सुश्री मायावती के मंत्रिमंडल द्वारा वास्तव में त्यागपत्र दिए जाने से पूर्व, समाजवादी पार्टी के नेता ने राज्यपाल के समक्ष सरकार बनाने

का अपना दावा पेश किया । तारीख 27 अगस्त, 2003 को विधानसभा के वे 13 सदस्य (जिन्हें इसमें इसके पश्चात् 'विधायक' कहा गया है) जो बी. एस. पी. के टिकटों पर विधानसभा में निर्वाचित हुए थे, राज्यपाल से मिले और उनसे यह अनुरोध किया कि समाजवादी पार्टी के नेता को सरकार बनाने के लिए आमंत्रित किया जाए । आरंभ में 8 विधायक राज्यपाल से मिले और उसी दिन 5 अन्य विधायक उनमें शामिल हो गए जिससे उनकी संख्या 13 हो गई ।

3. राज्यपाल ने विधानसभा के विघटन के लिए मायावती के मंत्रिमंडल की सिफारिश को स्वीकार नहीं किया । राज्यपाल ने तारीख 29 अगस्त, 2003 को समाजवादी पार्टी के नेता श्री मुलायम सिंह यादव को सरकार बनाने के लिए आमंत्रित किया और उसे विधानसभा में अपना बहुमत साबित करने के लिए दो सप्ताह का समय दिया । तारीख 4 सितम्बर, 2003 को बी. एस. पी. विधायक दल के नेता श्री स्वामी प्रसाद मौर्य ने भारत के संविधान की दसवीं अनुसूची के साथ पठित अनुच्छेद 191 के निबंधनानुसार यह प्रार्थना करते हुए अध्यक्ष के समक्ष एक याचिका फाइल की कि बी. एस. पी. के उन 13 विधायकों को, जिन्होंने 27 अगस्त, 2003 को राज्यपाल के समक्ष मुलायम सिंह यादव का समर्थन करने की घोषणा की थी, इस आधार पर संविधान की दसवीं अनुसूची के पैरा 2 के निबंधनानुसार निरर्हित किया जाए कि उन्होंने अपने मूल राजनीतिक दल बी. एस. पी. की अपनी सदस्यता स्वेच्छा से छोड़ दी है । तारीख 5 सितम्बर, 2003 को बी. एस. पी. की ओर से विधानसभा अध्यक्ष के समक्ष एक केवियट भी फाइल किया गया था जिसमें अध्यक्ष से यह प्रार्थना की गई कि यदि उन सदस्यों द्वारा जिन्होंने पार्टी छोड़ी है, विभाजन होने का कोई दावा किया जाता है तो बी. एस. पी. के प्रतिनिधि को भी सुना जाए । तारीख 6 सितम्बर, 2003 को 37 विधायकों द्वारा एक प्रार्थना की गई जिसके बारे में यह कहा गया कि वह प्रार्थना बी. एस. पी. की टिकटों पर निर्वाचित हुए 40 विधायकों की ओर से है, जिसके द्वारा अध्यक्ष से यह प्रार्थना की गई कि इस आधार पर बी. एस. पी. के विभाजन को मान्यता प्रदान की जाए कि 109 विधायकों वाली बी. एस. पी. के एक-तिहाई सदस्य 26 अगस्त, 2003 को लखनऊ के दारूलशफा स्थित एम. एल. ए. होस्टल में आयोजित एक बैठक के अनुसरण में इस दल से अलग हो गए हैं । अध्यक्ष ने विभाजन को मान्यता देने संबंधी उक्त आवेदन पर उसी शाम कार्यवाही आरंभ की । उसने यह सत्यापित किया कि जिन

37 सदस्यों ने उसे प्रस्तुत किए गए आवेदन पर हस्ताक्षर किए थे, वास्तव में हस्ताक्षर किए थे चूंकि वे उसके समक्ष व्यक्तिगत रूप से उपस्थित हुए थे । बी. एस. पी. विधायक दल के नेता मौर्य के आक्षेपों को नामंजूर करते हुए इस गणित के आधार पर बी. एस. पी. में विभाजन को स्वीकार करते हुए एक आदेश पारित किया कि 109 विधायकों में से 37 विधायक विधायक दल के सदस्यों का एक-तिहाई गठित करते हैं । इस समूह को लोकतांत्रिक बहुजन दल के रूप में जाना जाने लगा । किन्तु उक्त दल अल्प काल तक रहा क्योंकि अध्यक्ष ने थोड़े समय पश्चात्, 6 सितम्बर, 2003 को ही यह स्वीकार कर लिया कि उक्त दल का समाजवादी पार्टी में विलय हो गया है । यह उल्लेख करना सुसंगत है कि अध्यक्ष ने तारीख 6 सितम्बर, 2003 के अपने आदेश में बी. एस. पी. द्वारा किए गए उस आवेदन को विनिश्चित नहीं किया जिसमें उन 13 विधायकों को, जोकि अध्यक्ष के समक्ष उपस्थित होने वाले 37 विधायकों में शामिल थे, निरर्हित करने की ईप्सा की गई थी तथा उस आवेदन पर विनिश्चय स्थगित कर दिया । ऐसा प्रतीत होता है कि तारीख 8 सितम्बर, 2003 को तीन और विधायक-अध्यक्ष के समक्ष उपस्थित हुए और यह कथन किया कि वे उन 37 विधायकों का समर्थन करते हैं जो तारीख 6 सितम्बर, 2003 को उसके समक्ष उपस्थित हुए थे और उस समूह में शामिल थे । अध्यक्ष ने उनके दावे को भी स्वीकार कर लिया ।

4. तारीख 29 सितम्बर, 2003 को अध्यक्ष के उक्त आदेश को चुनौती देते हुए इलाहाबाद उच्च न्यायालय की लखनऊ न्यायपीठ के समक्ष 2003 की रिट याचिका सं. 5085 फाइल की गई थी । वह याचिका 1 अक्तूबर, 2003 को उच्च न्यायालय की खंड न्यायपीठ के समक्ष प्रस्तुत की गई और उच्च न्यायालय द्वारा रखे गए आदेश-पत्र से यह प्रकट होता है कि रिट याचिका को अगली सुनवाई के लिए 8 अक्तूबर, 2003 को सूचीबद्ध करने का निदेश दिया गया था । इसे 13 अक्तूबर, 2003 के लिए और इसके बाद 22 अक्तूबर, 2003 और इसके बाद 29 अक्तूबर, 2003 और फिर 5 नवम्बर, 2003 के लिए स्थगित कर दिया गया । आदेशपत्र में यह अभिलिखित है कि तारीख 5 नवम्बर, 2003 को रिट याची के विद्वान् काउन्सेल की सविस्तार सुनवाई की गई थी । कोई आदेश पारित नहीं किया गया था किन्तु मामला काउन्सेल के अनुरोध पर, जो कि प्रकटतः राज्य के महाधिवक्ता का प्रतिनिधित्व कर रहा था, अगले दिन के लिए स्थगित कर दिया गया था । मामला 6 नवम्बर, 2003 से 10 नवम्बर,

2007(2) eILR(PAT) SC 1

2003 के लिए स्थगित कर दिया गया और विद्वान महाधिवक्ता के अनुरोध पर इसे 14 नवम्बर, 2003 को सूचीबद्ध करने का निदेश दिया गया था । उसी दिन अध्यक्ष ने, जिसके समक्ष बी. एस. पी. के 13 सदस्यों की निरर्हता की ईप्सा करते हुए रिट याची मौर्य द्वारा फाइल की गई याचिका लंबित थी, उसके द्वारा इससे पूर्व 6 सितम्बर, 2003 और 8 सितम्बर, 2003 को जो कुछ किया है उसकी अवेक्षा करते हुए एक आदेश पारित किया जिसके द्वारा निरर्हता की ईप्सा करने वाली याचिका को इस आधार पर स्थगित कर दिया गया कि यह न्याय के हित में होगा कि लंबित रिट याचिका में उच्च न्यायालय के विनिश्चय की प्रतीक्षा की जाए क्योंकि उसमें कुछ मुद्दों पर किया जाने वाला विनिश्चय उसके विचार के लिए सुसंगत होगा । इसलिए यह आदेश किया गया था कि उच्च न्यायालय द्वारा रिट याचिका का विनिश्चय करने के पश्चात् ही निरर्हता संबंधी याचिका निपटारे के लिए उसके समक्ष रखी जाए ।

5. उच्च न्यायालय में रिट याचिका का पुराना इतिवृत्त है । तारीख 14 दिसम्बर, 2003 को जब वह सुनवाई के लिए प्रस्तुत की गई तब इसे अगले सप्ताह समुचित न्यायपीठ के समक्ष सूचीबद्ध करने का निदेश दिया गया । तारीख 16 अप्रैल, 2004 को यह निदेश दिया गया कि इसे 22 अप्रैल, 2004 को प्रस्तुत किया जाए । इसे तारीख 22 अप्रैल, 2004 को इस मताभिव्यक्ति के साथ व्यतिक्रम के कारण खारिज कर दिया गया कि न तो रिट याची की ओर से कोई काउन्सेल और न ही अध्यक्ष की ओर से कोई काउन्सेल उपस्थित हुआ । यह उल्लेखनीय है कि उच्च न्यायालय ने 5 नवम्बर, 2003 को यह लेखबद्ध किया था कि उसने रिट याची की पूर्णतः सुनवाई पूरी कर ली है और आगे सुनवाई के लिए स्थगन महाधिवक्ता के अनुरोध पर किया गया था । फिर भी तारीख 22 अप्रैल, 2004 को उच्च न्यायालय ने इस आधार पर व्यतिक्रम के लिए रिट याचिका को खारिज कर दिया कि दोनों पक्षों के काउन्सेल उपस्थित नहीं हैं । प्रत्यावर्तन के लिए एक आवेदन तारीख 27 अप्रैल, 2004 को फाइल किया गया था और इस आवेदन को लगभग आठ मास तक लंबित रखा गया जब तक कि 20 दिसम्बर, 2004 को वह आदेश पारित नहीं कर दिया गया जिसके द्वारा रिट याचिका को व्यतिक्रम के लिए खारिज करने वाले तारीख 22 अप्रैल, 2004 के आदेश को वापस मंगाया गया था और उसे उसके मूल संख्यांक में प्रत्यावर्तित कर दिया गया था और यह निदेश भी दिया गया था कि रिट याचिका को तारीख 4 जनवरी, 2005 को समुचित

न्यायपीठ के समक्ष सूचीबद्ध किया जाए । तारीख 4 जनवरी, 2005 को रिट याचिका महाधिवक्ता के अनुरोध पर अगले दिन के लिए स्थगित कर दी गई । तारीख 5 जनवरी, 2005 को न्यायपीठ द्वारा यह अवेक्षा की गई कि ऐसा प्रतीत होता है कि मामले पर ग्रहण करने के प्रक्रम पर सविस्तार सुनवाई की जा चुकी है और न तो रिट याचिका को ग्रहण किया गया और न ही प्रत्यर्थियों को कोई सूचना देने का आदेश किया गया और रिट याची के काउन्सेल की ग्रहण करने संबंधी प्रश्न पर तथा उसके द्वारा फाइल किए गए अंतरिम अनुतोष से संबंधित आवेदन पर पुनः सुनवाई की गई और यह लेखबद्ध किया गया कि उसने अपने तर्क पूरी तरह से प्रस्तुत कर दिए हैं और आगे यह निदेश दिया गया कि रिट याचिका अगले दिन सूचीबद्ध की जाए । तारीख 6 जनवरी, 2005 को यह लेखबद्ध किया गया कि रिट याची के काउन्सेल ने उस प्रक्रम पर अंतरिम अनुतोष के लिए दबाव नहीं डाला और इसलिए अंतरिम अनुतोष संबंधी आवेदन खारिज किया जा रहा है ।

6. तारीख 6 जनवरी, 2005 को रिट याची के काउन्सेल और प्रत्यर्थियों की ओर से उपस्थित कुछ काउन्सेलों की सुनवाई करने के पश्चात् रिट याचिका ग्रहण कर ली गई । विरोधी पक्षकारों को, जो कि विधायकों का वह समूह था जिसने विभाजन को मान्यता देने के लिए अध्यक्ष के समक्ष समावेदन किया था, सूचना जारी करने का आदेश किया गया । कुछ और तारीखों के पश्चात् तारीख 18 फरवरी, 2005 को सूचना की तामील के संबंध में आदेश पारित किए गए थे और रिट याचिका को 10 मार्च, 2005 को सुनवाई के लिए सूचीबद्ध करने का निदेश दिया गया था । तारीख 10 मार्च, 2005 को यह पता चलने पर कि सूचनाओं से बचने के कुछ प्रयत्न किए गए हैं, न्यायालय ने सूचनाओं की प्रतिस्थापित तामील का आदेश किया यह निदेश दिया कि रिट याचिका 11 अप्रैल, 2005 को सूचीबद्ध की जाए । तारीख 11 अप्रैल, 2005 को यह घोषित किया गया कि सूचना की तामील पर्याप्त रूप से कर दी गई है और मामला तारीख 2 मई, 2005 को सुनवाई के लिए सूचीबद्ध करने का निदेश दिया गया । कई स्थगनों के पश्चात् जो कि मुख्यतः रिट याचिका में के प्रत्यर्थियों के अनुरोध पर किए गए थे, बहस आरंभ की गई । तारीख 12 मई, 2005 को रिट याची के काउन्सेल ने अपनी बहस पूरी की और इसके बाद मामला अभिलेख पर कतिपय प्रति-शपथपत्र लेने के पश्चात् आगे सुनवाई के लिए 25 मई, 2005 तक के लिए स्थगित कर दिया गया । अंततः, प्रत्यर्थियों के काउन्सेलों में से एक काउन्सेल की बहस आरंभ हुई और मामला उसकी

बहस को पूरा करने के लिए और रिट याचिका में के प्रत्यर्थियों के अन्य काउन्सेलों द्वारा बहस करने के लिए 6 जुलाई, 2005 तक स्थगित कर दिया गया ।

7. इसी बीच, तारीख 7 सितम्बर, 2005 को अध्यक्ष ने एक आदेश पारित किया जिसके द्वारा बी. एस. पी. के 13 विधायकों को निरर्हित करने के लिए मौर्य द्वारा फाइल की गई याचिका नामंजूर कर दी गई । यह उल्लेखनीय है कि अध्यक्ष ने इससे पूर्व उस आवेदन को तब तक सुनवाई के लिए स्थगित कर दिया था जब तक कि रिट याचिका का विनिश्चय नहीं हो जाता । इसी बीच, उच्च न्यायालय में बहस चलती रही और यह निदेश दिया गया कि रिट याचिका आगे बहस के लिए 17 अगस्त, 2005 को सूचीबद्ध की जाए । मामला अगले दिन के लिए स्थगित कर दिया गया और पुनः पश्चात्वर्ती तारीखों के लिए स्थगित किया गया ।

8. तारीख 8 सितम्बर, 2005 को प्रत्यर्थियों की ओर से एक आवेदन किया गया जिसके द्वारा अध्यक्ष के तारीख 7 सितम्बर, 2005 वाले उस आदेश को ध्यान में रखते हुए जिसके द्वारा रिट याची द्वारा फाइल किया गया 13 विधायकों की निरर्हता की ईप्सा करने वाला आवेदन खारिज कर दिया गया था, रिट याचिका को खारिज करने की ईप्सा की गई थी । उक्त आवेदन उसी दिन खारिज कर दिया गया था । तारीख 9 सितम्बर, 2005 को तर्कों की सुनवाई की गई और मामला अगली सुनवाई के लिए स्थगित कर दिया गया ।

9. तारीख 21 अक्तूबर, 2005 को रिट याची की ओर से एक आवेदन किया गया था जिसमें रिट याचिका में संशोधन करने की प्रार्थना की गई थी । इसे रिट याचिका में के प्रत्यर्थियों को आक्षेप फाइल करने के लिए समय प्रदान करते हुए सूचीबद्ध करने का निदेश दिया गया था । तारीख 22 नवम्बर, 2005 को आदेशपत्र में एक न्यायाधीश द्वारा दिया गया निम्नलिखित आदेश लेखबद्ध किया गया :–

> "मामला केवल संशोधन आवेदन पर विचार करने और उसका निपटारा करने के लिए तथा आवेदन पर आगे सुनवाई करने के लिए आज सूचीबद्ध किया गया था और 4.00 बजे अपराह्न तक संशोधन आवेदन की बाबत बहस पूरी हो सकी । जैसा कि आवेदन के संबंध में पारित आदेश से उपदर्शित होता है, न्यायमूर्ति बंधु एम. ए. खान ने एक टंकित और हस्ताक्षरित 'आदेश' निकाला जिसमें संशोधन के

लिए आवेदन को नामंजूर कर दिया गया था । माननीय बंधु एम. ए. खान ने पूर्ववर्ती आदेश की तरह पुनः सम्यक् रूप से टंकित और हस्ताक्षरित निर्णय(जिसमें उनकी अपनी राय थी) निकाला और न्यायपीठ सचिव को यह निदेश दिया कि उसे मुख्य रिट याचिका में उसके "निर्णय" के रूप में अभिलेख पर रखा जाए । उक्त निर्णय का प्रारूप भी मुझे परिचालित नहीं किया गया था और न ही मुझसे कभी परामर्श किया गया था । इसके अतिरिक्त, यह इंगित किया जाता है कि माननीय बंधु न्यायमूर्ति एम. ए. खान ने किसी भी समय यह उपदर्शित नहीं किया था कि उसने निर्णय पहले ही तैयार कर लिया था । इसके अलावा, मैंने किसी भी समय अपने बंधु न्यायमूर्ति एम. ए. खान को यह संकेत नहीं दिया था कि रिट याचिका में निर्णय उसके द्वारा तैयार किया जाएगा । यह कहने की आवश्यकता नहीं है कि न तो आवेदन के संबंध में पारित आदेश और न ही रिट याचिका के गुणागुण के आधार पर पारित तथाकथित निर्णय मेरे बंधु माननीय न्यायमूर्ति एम. ए. खान द्वारा खुले न्यायालय में दिया गया था ।"

10. प्रकटतः, इन घटनाओं को ध्यान में रखते हुए विद्वान मुख्य न्यायमूर्ति ने रिट याचिका की सुनवाई के लिए एक पूर्ण न्यायपीठ का गठन किया । जिस संशोधन की प्रार्थना की गई थी उसे अनुज्ञात किया गया और अंततः रिट याचिका की अंतिम रूप से सुनवाई की गई और अपीलाधीन निर्णय द्वारा उसकी निपटारा किया गया । अपीलाधीन निर्णय के अनुसार, रिट याचिका विद्वान मुख्य न्यायमूर्ति द्वारा खारिज कर दी गई थी जबकि अन्य दो विद्वान न्यायाधीशों ने अध्यक्ष के आदेशों को अभिखंडित कर दिया था और अध्यक्ष को यह निदेश दिया कि विशेष रूप से रिट याची द्वारा 13 विधायकों को निरर्हित करने के लिए फाइल की गई याचिका के प्रति निर्देश से मामले पर पुनर्विचार किया जाए और समुचित आदेश पारित किया जाए । इससे व्यथित होकर ये अपीलें फाइल की गई हैं ।

11. मामले के गुणागुण के आधार पर हमारा अंतिम विनिश्चय चाहे कुछ भी हो, हमें उस विलंबित रीति के बारे में अपनी अप्रसन्नता व्यक्त करनी चाहिए जिसमें उच्च न्यायालय द्वारा किसी महत्वपूर्ण और सांविधानिक औचित्य वाले मामले के संबंध में कार्यवाही की गई है । उस न्यायालय से अधिक तत्परता बरतने की प्रत्याशा थी और उसे यह सुनिश्चित करना चाहिए था कि दुर्भाग्यपूर्ण घटनाओं को (न्यायपूर्ण और सम्यक् न्याय-प्रशासन के दृष्टिकोण से) रोका गया था । यद्यपि हम

सामान्यतः उच्च न्यायालय की गतिविधियों के बारे में टिप्पणी करने से विरत रहते हैं तथापि हम इस बात को सुनिश्चित करने की आवश्यकता पर बल देने के लिए कि इस संस्था के कामकाज की रीति के बारे में आलोचना करने की कोई गुंजाइश न रहे, हम उक्त मताभिव्यक्तियां करने के लिए बाध्य हुए हैं ।

12. रिट याचिका में के प्रत्यर्थी, जो कि पार्टी छोड़ने वाले बी. एस. पी. के 37 विधायक हैं, रिट याची - मौर्य द्वारा फाइल की गई 2006 की विशेष इजाजत याचिका (सिविल) सं. 6323 से उद्‌भूत होने वाली अपील के सिवाय सभी अपीलों में अपीलार्थी हैं । जबकि रिट याचिका में के प्रत्यर्थियों ने न्यायपीठ के बहुमत के उस विनिश्चय को चुनौती दी है जिसके द्वारा मामला अध्यक्ष को विप्रेषित किया गया था, किन्तु रिट याची ने अपनी अपील में इस अभिवाक् पर बहुमत द्वारा किए गए प्रतिप्रेषण आदेश को चुनौती दी है कि अभिवचनों और उपलब्ध सामग्री के आधार पर उच्च न्यायालय को रिट याची द्वारा 13 विधायकों को निरर्हित करने के लिए फाइल की गई याचिका सीधे ही मंजूर कर देनी चाहिए थी । उसके अनुसार प्रतिप्रेषण अनावश्यक था और परिस्थितियों को ध्यान में रखते हुए, उच्च न्यायालय द्वारा अंतिम आदेश पारित किया जाना चाहिए था ।

13. भारत के संविधान का अनुच्छेद 191 विधानसभाओं की सदस्यता के लिए निरर्हता के संबंध में है जैसे कि अनुच्छेद 102 संसद् के सदनों की सदस्यता के लिए निरर्हता के संबंध में है । अनुच्छेद 102 और अनुच्छेद 191 में संविधान (बावनवां संशोधन) अधिनियम, 1985 द्वारा 1 मार्च, 1985 से संशोधन किया गया था और यह उपबंध किया गया कि कोई व्यक्ति संसद् के किसी सदन या किसी राज्य की विधानसभा या विधान परिषद् का सदस्य होने के लिए निरर्हित होगा यदि वह भारत के संविधान की दसवीं अनुसूची के अधीन इस प्रकार निरर्हित हो जाता है । दसवीं अनुसूची भी जोड़ी गई थी जिसमें दल परिवर्तन के आधार पर निरर्हता के बारे में उपबंध किए गए हैं । इस संशोधन की सांविधानिक विधिमान्यता को **किहोतो होलोहन बनाम ज़ाचिल्लु और अन्य**[1] वाले मामले में इस न्यायालय के समक्ष चुनौती दी गई थी । इस न्यायालय ने इस निष्कर्ष के अधीन रहते हुए संशोधन की विधिमान्यता को कायम रखा कि भारत के संविधान की दसवीं अनुसूची के पैरा 7 में भारत के संविधान के अनुच्छेद 368(2) के

[1] [1992] 1 एस. सी. आर. 686.

निबंधनानुसार अनुसमर्थन अपेक्षित है और यह प्रवृत्त नहीं हुआ था इसलिए इस सीमा तक पैरा 7 की विधिमान्यता के संबंध में निर्णय सुनाने की कोई आवश्यकता नहीं थी कि यह अध्यक्ष के विनिश्चय का न्यायिक पुनर्विलोकन करने से प्रवारित करता है । किन्तु उसने यह अभिनिर्धारित किया कि न्यायिक पुनर्विलोकन को अलग नहीं रखा जा सकता भले ही ऐसा पुनर्विलोकन व्यापक प्रकृति का क्यों न हो । हम उस विनिश्चय के प्रकाश में सुसंगत पहलुओं की परीक्षा कर रहे हैं ।

14. प्रस्तुत मामले में रिट याची - मौर्य द्वारा अध्यक्ष के समक्ष किया गया आवेदन इस आधार पर संविधान की दसवीं अनुसूची के पैरा 2 के अधीन किया गया था कि उन 13 सदस्यों ने, जो तारीख 27 अगस्त, 2003 को राज्यपाल से मिले थे, दसवीं अनुसूची में यथा-परिभाषित अपने मूल राजनीतिक दल, बी. एस. पी. की सदस्यता स्वेच्छा से छोड़ दी थी । उन विधायकों की ओर से, जिन्हें निरर्हित करने की ईप्सा की गई है और उन विधायकों की ओर से जिनके बारे में यह दावा किया गया है कि वे बी. एस. पी. से उनके साथ शामिल हो गए हैं, यह दावा किया गया है कि सुसंगत समय पर निरर्हता दसवीं अनुसूची के पैरा 3, 4 और 5 के उपबंधों के अध्यधीन है और चूंकि दसवीं अनुसूची के पैरा 3 के निबंधनानुसार बी. एस. पी. में विभाजन हुआ है और उसके बाद 40 विधायकों का दसवीं अनुसूची के पैरा 4 के निबंधनानुसार समाजवादी पार्टी में विलय हो गया है इसलिए उन्हें दसवीं अनुसूची के पैरा 2(1)(क) के निबंधनानुसार दल परिवर्तन के आधार पर निरर्हित नहीं किया जा सकता । अध्यक्ष ने, जैसी कि अवेक्षा की गई है, बी. एस. पी. विधायक दल के नेता मौर्य द्वारा 13 विधायकों को निरर्हित करने के लिए किए गए आवेदन पर दसवीं अनुसूची के पैरा 2 के निबंधनानुसार कोई आदेश पारित नहीं किया था बल्कि उसके समक्ष 37 विधायकों द्वारा फाइल की गई उस याचिका में आदेश पारित किया था जिसमें यह दावा किया गया था कि बी. एस. पी. का विभाजन हो गया है और वे विधायक दल के, जिसके 109 सदस्य हैं, एक-तिहाई सदस्य गठित करते हैं । जब तत्कालीन अध्यक्ष ने उन विधायकों के, जिन्होंने बी. एस. पी. छोड़ दी थी, दावे के संबंध में आदेश पारित किया तब उसने मौर्य द्वारा फाइल की गई निरर्हता संबंधी याचिका पर विनिश्चय मुल्तवी कर दिया जिसे बाद में रिट याचिका के विनिश्चित होने तक स्थगित कर दिया किन्तु इसके बाद भी उत्तरवर्ती अध्यक्ष ने इस आधार पर उस आदेश को उलट दिया और अभिकथित प्रारंभिक आक्षेप ग्रहण करने के

पश्चात् उसे खारिज करने की कार्यवाही की कि उसने विभाजन को पहले ही मान्य ठहराया दिया था, जबकि रिट याचिका अभी भी लंबित थी और उस पर बहस की जा रही थी ।

15. इसके पश्चात् ही रिट याची ने रिट याचिका में संशोधन करने की ईप्सा की जिसे बाद में अनुज्ञात कर दिया गया ।

16. अब हम उस कार्रवाई पर विचार करेंगे जिसके कारण संविवाद उद्भूत हुआ । बी. एस. पी. के आठ विधायकों ने और उसके बाद बी. एस. पी. के पांच अन्य सदस्यों ने राज्यपाल को 27 अगस्त, 2003 को एकसमान शब्दों वाले पत्र सौंपे । उन पत्रों के चल अनुवाद निम्नलिखित रूप में है:–

> "हम नीचे उल्लिखित विधायक, जिन्होंने नीचे हस्ताक्षर किए हैं, आपसे विनम्र प्रार्थना करते हैं कि श्री मुलायम सिंह यादव जी को सरकार बनाने के लिए आमंत्रित किया जाए क्योंकि उत्तर प्रदेश की जनता न तो निर्वाचन चाहती है और न ही राष्ट्रपति शासन ।"

ये सदस्य बी. एस. पी. के सदस्य थे और वे राज्यपाल से यह अनुरोध कर रहे थे कि वे विपक्ष के नेता को सरकार बनाने के लिए आमंत्रित करें । विधानमंडल में बी. एस. पी. के नेता मौर्य ने इसी कार्यवाही के आधार पर अध्यक्ष के समक्ष याचिका फाइल की थी जिसमें इस आधार पर इन 13 सदस्यों को निरर्हित करने की ईप्सा की गई थी कि उन्होंने बी. एस. पी., जिसे निर्वाचन आयोग ने राष्ट्रीय दल के रूप में मान्यता प्रदान की है, की सदस्यता स्वेच्छा से छोड़ दी है । तारीख 6 सितम्बर, 2003 को, जब कि यह कार्यवाही लंबित थी, 37 विधायकों द्वारा अध्यक्ष के समक्ष विभाजन को मान्यता देने के लिए एक आवेदन किया गया था । चूंकि बी. एस. पी. के नेता ने अध्यक्ष के समक्ष केवियट फाइल कर दिया था इसलिए अध्यक्ष ने आदेश पारित करते समय केवियटकर्ता को सुना । इसमें अंतर्वलित संविवाद की प्रकृति को ध्यान में रखते हुए 37 विधायकों द्वारा अध्यक्ष के समक्ष किए गए उक्त अभ्यावेदन या आवेदन को उद्धृत करना उचित प्रतीत होता है । उसका चल अनुवाद निम्नलिखित रूप में है :–

> "हम, विधानसभा के निम्नलिखित सदस्य, बहुजन समाज पार्टी के सदस्यों के रूप में अधिसूचित हैं । बी. एस. पी. की नेता कुमारी मायावती के तानाशाही दृष्टिकोण, गलत नीतियों और सदस्यों के साथ किए जा रहे दुर्व्यवहार के कारण बी. एस. पी. के सदस्यों में

असंतोष है । उपर्युक्त कारणों से व्यथित होकर, बहुजन समाज पार्टी के सदस्यों, पदाधिकारियों और कार्यकर्ताओं ने तारीख 26 अगस्त, 2003 को दारूलसफा में एक बैठक की । सभी उपस्थित सदस्यों ने एकमत से यह कहा कि कुमारी मायावती उत्तर प्रदेश राज्य और समाज के हितों के नाम पर केवल अपने व्यक्तिगत हितों को पूरा करने में लगी हुई है ।

अतः, सर्वसम्मति से यह संकल्प पारित किया गया कि बहुजन समाज पार्टी का विघटन कर दिया जाए और विधानसभा के सदस्य श्री राजेन्द्र सिंह राणा के नेतृत्व में लोकतांत्रिक बहुजन दल के नाम से एक नए दल का गठन किया जाए । हम, विधानसभा के अधोहस्ताक्षरी सदस्यों ने एक पृथक् समूह का गठन किया है जो कि विभाजन से उद्भूत नए दल का प्रतिनिधित्व करता है । हमारी संख्या विधानसभा में तत्कालीन बहुजन समाज पार्टी के कुल सदस्यों की संख्या के एक-तिहाई से अधिक है ।

अतः यह अनुरोध किया जाता है कि उपर्युक्त लोकतांत्रिक बहुजन दल को विधानसभा में एक पृथक् समूह के रूप में मान्यता प्रदान की जाए और सभा के भीतर उनके पृथक् बैठने की व्यवस्था कराई जाए ।"

इस पर 37 विधायकों ने हस्ताक्षर किए थे ।

17. अध्यक्ष ने इसी आवेदन पर उसी शाम आदेश पारित किया और यही आदेश उच्च न्यायालय के समक्ष फाइल की गई रिट याचिका में चुनौती की विषयवस्तु है । अध्यक्ष के आदेश में यह लेखबद्ध है कि आवेदन की अंतर्वस्तु के अनुसार, बी. एस. पी. के सदस्यों, पदाधिकारियों और विधानसभा सदस्यों की एक बैठक तारीख 26 अगस्त, 2003 को दारूलसफा में हुई थी और इस बैठक में सर्वसम्मति से यह संकल्प पारित किया गया था कि राजेन्द्र सिंह राणा के नेतृत्व में लोकतांत्रिक बहुजन दल के नाम से एक नए दल का गठन किया जाए । अध्यक्ष ने इसके लिए यह कारण दिया कि उन सदस्यों की संख्या, जो इस समूह में शामिल हैं, 109 में से 37 प्रतीत होती है और यह संख्या बी. एस. पी. के विधायकों की कुल संख्या का एक-तिहाई होगी । अध्यक्ष ने मौर्य द्वारा किए गए आक्षेपों को ध्यान में रखते हुए, जिसने उसके समक्ष केवियट फाइल किया था, यह सत्यापित किया कि क्या 37 विधायकों ने अभ्यावेदन या आवेदन पर

हस्ताक्षर किए थे । चूंकि वे विधायक उसके समक्ष उपस्थित हुए थे और उनकी पहचान कर ली गई थी इसलिए उसने इस आधार पर कार्यवाही की कि बी. एस. पी. के 37 विधायक उसके समक्ष दावे सहित उपस्थित हुए थे । अध्यक्ष ने केवियटकर्ता की इस दलील की अवेक्षा की कि मूल राजनीतिक दल में किसी विभाजन को साबित करने का भार 37 विधायकों पर था और जब तक वे मूल दल में कोई विभाजन साबित नहीं कर देते तब तक वे संविधान की दसवीं अनुसूची के पैरा 3 का अवलंब नहीं ले सकते थे और न ही यह दावा कर सकते थे कि राजनीतिक दल में कोई विभाजन हुआ है और इसके परिणामस्वरूप वे दसवीं अनुसूची के पैरा 2 के अधीन निरर्हता से ग्रस्त नहीं हुए हैं । इसके अतिरिक्त, केवियटकर्ता की इस दलील का खंडन करते हुए कि विभाजन से संबंधित विनिश्चय केवल निर्वाचन आयोग द्वारा किया जा सकता है और इस दलील का खंडन करते हुए कि मूल 13 सदस्य, जिन्होंने दल छोड़ा था या जिन्होंने दल की अपनी सदस्यता स्वेच्छा से छोड़ दी थी, बी. एस. पी. के विधायकों की कुल संख्या का एक-तिहाई गठित नहीं करते थे इसलिए वे निरर्हित हो गए हैं, अध्यक्ष नें यह कहा कि दसवीं अनुसूची के पैरा 3 की अपेक्षा को पूरा करने की पहली शर्त केवल यह थी कि सदस्यों ने इस बात का दावा अवश्य किया हो कि मूल राजनीतिक दल का विभाजन हो गया है और उन्हें यह दर्शाना चाहिए कि इसके परिणामस्वरूप विधायक दल का भी विभाजन हो गया है और यह कि अलग हुए समूह में विधायक दल के एक-तिहाई सदस्य हैं । इसलिए, अध्यक्ष ने अपने समक्ष उपस्थित एक-तिहाई विधायकों को ध्यान में रखते हुए इस आधार पर कार्यवाही की कि यदि मूल राजनीतिक दल में विभाजन का दावा किया जाता है तो वह पर्याप्त होगा । अध्यक्ष ने स्थिति इस प्रकार विरचित की :–

"पैरा 3 के अधीन निम्नलिखित शर्तें पूरी की जानी हैं :–

1. किसी सदन के किसी सदस्य द्वारा यह दावा किया जाना कि उसने और विधायक दल के कुछ अन्य सदस्यों ने एक ऐसे समूह का गठन किया है जो एक ऐसे दल का प्रतिनिधित्व करते हैं जो कि उसके मूल राजनीतिक दल में विभाजन के परिणामस्वरूप बना है ।

2. नए गठित समूह में उस विधायक दल के विधायकों की कुल संख्या के कम से कम एक-तिहाई सदस्य हैं ।

यदि किसी मामले में उपर्युक्त दो शर्तें पूरी नहीं की जाती हैं तो ऐसा दावा करने वाला व्यक्ति और अन्य सदस्य दसवीं अनुसूची के पैरा 2 में उल्लिखित आधारों पर विधानसभा की सदस्यता से निरर्हित नहीं होंगे ।"

अध्यक्ष ने इस तर्क का भी खंडन किया कि आरंभ में केवल 13 विधायकों ने मूल राजनीतिक दल छोड़ा था और उन्हें निरर्हित किया जाना चाहिए और बाद में अन्य विधायकों के उनमें शामिल होने से स्थिति में सुधार नहीं होगा । अध्यक्ष ने आगे यह मत व्यक्त किया कि उसे अधिकरण के रूप में कृत्य करते हुए मौर्य द्वारा 13 विधायकों की निरर्हता के बारे में उठाए गए प्रश्न का विनिश्चय करना है और उसके द्वारा उस संबंध में समुचित समय पर विनिश्चय किया जाएगा । इस प्रकार, 37 सदस्यों के अलग हो जाने संबंधी दावे को अध्यक्ष द्वारा मान्यता दी गई थी । इसलिए, अध्यक्ष ने इस संबंध में कोई विनिश्चय नहीं किया कि क्या मूल राजनीतिक दल में प्रथमदृष्ट्या कोई विभाजन हुआ था ।

18. अध्यक्ष ने उसी दिन 37 विधायकों का एक अन्य आवेदन भी ग्रहण कर लिया और यह आदेश किया कि वह लोकतांत्रिक बहुजन दल के समाजवादी पार्टी में विलय को मान्यता प्रदान कर रहा है ।

19. अध्यक्ष ने 37 विधायकों द्वारा विभाजन को मान्यता प्रदान करने के लिए अपनाई गई स्थिति की स्वीकार्यता को न्यायोचित ठहराने के लिए **रवि एस. नायक** बनाम **भारत संघ**[1] वाले मामले में की गई इस मताभिव्यक्ति का अवलंब लिया कि यदि उनके द्वारा मूल राजनीतिक दल में विभाजन का दावा किया जाता है तो वह पर्याप्त है । उस निर्णय के पैरा 36 में निम्नलिखित दो अपेक्षाएं अधिकथित करने के पश्चात्:—

(i) किसी सदन के सदस्य को यह दावा करना चाहिए कि वह और उसके विधायक दल के अन्य सदस्य ऐसे समूह का गठन करते हैं जो ऐसे दल का प्रतिनिधित्व करता है जो कि उसके मूल दल में विभाजन के परिणामस्वरूप बना है ; और

(ii) ऐसे समूह में उस विधायक दल के एक-तिहाई से कम सदस्य शामिल नहीं होने चाहिएं ।

इस न्यायालय ने यह मताभिव्यक्ति की:—

---

[1] [1994] 1 एस. सी. आर. 754.

"प्रस्तुत मामले में, प्रथम अपेक्षा की पूर्ति हो गई थी क्योंकि नायक ने ऐसा दावा कर दिया है । एकमात्र प्रश्न यह रहता है कि क्या दूसरी अपेक्षा पूरी की गई थी ।"

किन्तु अध्यक्ष उसी निर्णय के पैरा 38 में निम्नलिखित वाक्य की अवेक्षा करने में असफल रहा जिसमें यह कहा गया था:–

"इस बात का अवधारण अध्यक्ष द्वारा उसके समक्ष प्रस्तुत सामग्री के आधार पर किया जाना है कि क्या कोई विभाजन हुआ था अथवा नहीं ।"

इस प्रकार, अध्यक्ष द्वारा ऐसा कोई निष्कर्ष नहीं निकाला गया कि मूल राजनीतिक दल में कोई विभाजन हुआ था जो कि दसवीं अनुसूची का पैरा 3 लागू करने की एक शर्त है ।

20. अब हम उच्च न्यायालय द्वारा अध्यक्ष के आदेश को चुनौती देते हुए मौर्य द्वारा फाइल की गई रिट याचिका पर कार्यवाही करते हुए अपीलाधीन निर्णय में अंगीकृत स्थिति की अवेक्षा करेंगे । विद्वान् मुख्य न्यायमूर्ति ने यह दृष्टिकोण अपनाया कि अध्यक्ष द्वारा मूल राजनीतिक दल में विभाजन के दावे और विधायक दल के एक-तिहाई सदस्यों के पृथक् होने के आधार पर विभाजन के प्रश्न पर उसके द्वारा विनिश्चय किए जाने के समय तक घटने वाली सभी घटनाओं को ध्यान में रखते हुए विभाजन संबंधी निष्कर्ष निकालना न्यायोचित था । विद्वान मुख्य न्यायमूर्ति ने यह अभिनिर्धारित किया कि विभाजन के द्रुत प्रभाव को ध्यान में रखा जा सकता है और अध्यक्ष ने प्रथमतः 13 विधायकों की निरर्हता की ईप्सा करते हुए मौर्य द्वारा फाइल की गई याचिका पर विचार न करके और उसे विनिश्चित न करके तथा उसे लंबित रखकर कोई अवैधता कारित नहीं की थी । इस प्रकार, उसने अध्यक्ष के विनिश्चय को कायम रखा । किन्तु अन्य दो विद्वान न्यायाधीशों ने, यद्यपि उन्होंने पृथक् कारण दिए थे, मूलतः यह दृष्टिकोण अपनाया कि अध्यक्ष ने पहले 13 सदस्यों की निरर्हता की ईप्सा करने वाले आवेदन को विनिश्चित न करके और उसके द्वारा 37 विधायकों द्वारा विभाजन को मान्यता देने के संबंध में किए गए आवेदन को विनिश्चित करने की कार्यवाही करके गलती की थी । चूंकि यह कार्यवाही ऐसी याचिका के कारण उद्भूत हुई थी जिसमें संविधान की दसवीं अनुसूची के पैरा 2 के निबंधनानुसार निरर्हता की ईप्सा की गई थी इसलिए दसवीं अनुसूची के पैरा 6 के निबंधनानुसार विभाजन को मान्यता देते समय भी

निरर्हित करने संबंधी दावे पर विनिश्चय को रोका नहीं जा सकता था । इसलिए, उन्होंने अध्यक्ष के आदेश को अभिखंडित कर दिया और अध्यक्ष को यह निदेश दिया कि वह रिट याची – मौर्य द्वारा उठाए गए दल परिवर्तन के प्रश्न पर अध्यक्ष के समक्ष कुछ विधायकों द्वारा लिए गए इस आधार पर पुनर्विचार करे कि दसवीं अनुसूची के पैरा 3 के निबंधनानुसार विभाजन हुआ है और इसलिए वे दसवीं अनुसूची के पैरा 2 के निबंधनानुसार निरर्हता से ग्रस्त नहीं हैं । बहुमत द्वारा अपनाए गए इस मत और अध्यक्ष के आदेश में किए गए हस्तक्षेप को 37 विधायकों के समूह वाले विभिन्न प्रत्यर्थियों द्वारा रिट याचिका में चुनौती दी गई है । रिट याची ने स्वयं भी आदेश के उस भाग को चुनौती दी है जिसका तात्पर्य यह स्थिति अपनाकर कार्यवाही को अध्यक्ष को प्रतिप्रेषित करना था कि उच्च न्यायालय को सामग्री के आधार पर सीधे ही यह अभिनिर्धारित करना चाहिए था कि बी. एस. पी. के 37 सदस्यों द्वारा संविधान की दसवीं अनुसूची के पैरा 3 के अधीन प्रतिरक्षा साबित नहीं की गई है और यह कि प्रथम प्रक्रम में उनमें से 13 तथा दूसरे प्रक्रम में शेष 24 विधायक संविधान की दसवीं अनुसूची के पैरा 2(1)(क) के निबंधनानुसार निरर्हित हो गए थे ।

21. दसवीं अनुसूची के निर्वचन, विभिन्न पैराओं की अंतर्वस्तु और प्रस्तुत मामले के तथ्यों के बारे में हमारे समक्ष विस्तार से बहस की गई है । बहस के आधार पर प्रथमतः दसवीं अनुसूची को अधिनियमित करने के उद्देश्य को ध्यान में रखते हुए उसकी परिधि और अंतर्वस्तु के संबंध में विचार करना आवश्यक है ।

22. संविधान (बावनवां संशोधन) अधिनियम, 1985 द्वारा अनुच्छेद 102 और अनुच्छेद 191 में उप-अनुच्छेद पुरःस्थापित करते हुए उन अनुच्छेदों में संशोधन किया गया था और दल परिवर्तन के आधार पर निरर्हता के बारे में उपबंधों को पुरःस्थापित करते हुए दसवीं अनुसूची जोड़ी गई थी । वे दल परिवर्तन द्वारा लोकतंत्र को होने वाले खतरे को दूर करने के लिए पुरःस्थापित किए गए थे । दल परिवर्तन के आधार पर संसद् की या विधानसभा की सदस्यता से निरर्हता के लिए एक आधार पुरःस्थापित किया गया था । इस न्यायालय द्वारा **किहोतो होलोहन**[1] वाले मामले में इस संशोधन को और दसवीं अनुसूची को समाविष्ट करने की सांविधानिक विधिमान्यता को उसके पैरा 7 के सिवाय कायम रखा गया था, जिसके बारे

[1] [1992] 1 एस. सी. आर. 686.

में यह अभिनिर्धारित किया गया था कि उसके लिए संविधान के अनुच्छेद 368(2) के निबंधनानुसार अभिपुष्टि आवश्यक है । इस संबंध में कोई विवाद नहीं है कि उस विनिश्चय को ध्यान में रखते हुए दसवीं अनुसूची का पैरा 7 प्रवर्तनशील नहीं है । संविधान न्यायपीठ ने यह अभिनिर्धारित किया कि विनिश्चय करने का अधिकार उच्च पदाधिकारी, अर्थात्, संसद् या विधानसभा के अध्यक्ष को प्रदान किया गया है और ऐसी शक्ति का प्रदत्त किया जाना सांविधानिक स्कीम के लिए अभिशाप नहीं है । इसी प्रकार, संविधान की दसवीं अनुसूची के पैरा 6 के निबंधनानुसार अध्यक्ष के समक्ष वाली कार्यवाहियों को प्रदत्त सीमित संरक्षण भी न्यायोचित था हालांकि उक्त संरक्षण अध्यक्ष के विनिश्चय को न्यायिक पुनर्विलोकन से प्रवारित नहीं करता था । किन्तु दसवीं अनुसूची के पैरा 6(1) के अधीन अध्यक्ष के विनिश्चय को प्रदान की गई अंतिमता को ध्यान में रखते हुए वह न्यायिक पुनर्विलोकन व्यापक नहीं था और न्यायिक पुनर्विलोकन नैसर्गिक न्याय के उल्लंघन, दुराग्रह, पक्षपात और ऐसी ही त्रुटियों के आधारों पर किया जा सकता था । इसके बाद ही **रवि एस. नायक**[1] वाले मामले में उन दो न्यायाधीशों द्वारा विनिश्चय किया गया जिन्होंने **किहोतो होलोहन**[2] वाले मामले में बहुमत वाला निर्णय दिया था और ऊपर निर्दिष्ट मताभिव्यक्तियां की थीं, जिन्हें बाद में स्पष्ट किया गया था । इतना कहना पर्याप्त है कि अध्यक्ष द्वारा तारीख 6 सितम्बर, 2003 को किया गया विनिश्चय भारत के संविधान के अनुच्छेद 226 और अनुच्छेद 227 के अधीन उच्च न्यायालय के समक्ष चुनौती दिए जाने से उन्मुक्त नहीं है ।

23. रिट याची की ओर से उपस्थित विद्वान काउन्सेल ने एक महत्वपूर्ण तर्क प्रस्तुत किया । उसने यह निवेदन किया कि अध्यक्ष से दसवीं अनुसूची के पैरा 6 के निबंधनों के अनुसार निरर्हता के प्रश्न को विनिश्चित करने की अपेक्षा की गई थी और उसके द्वारा उस प्रश्न के बारे में किए गए विनिश्चय को ही पैरा 6(1) के निबंधनों के अनुसार सशर्त अंतिमता प्रदान होती है न कि स्वतंत्र रूप से किए गए ऐसे विनिश्चय को जिसका तात्पर्य किसी प्रकार के विभाजन को मान्य ठहराना है । उसने यह इंगित किया कि इस मामले में अध्यक्ष ने 13 विधायकों के विरुद्ध निरर्हता के लिए फाइल की गई याचिका को विनिश्चित नहीं किया था और अध्यक्ष ने केवल बाद में 37 सदस्यों द्वारा उन्हें इस आधार पर एक पृथक् समूह मानने के

---

[1] [1994] 1 एस. सी. आर. 754.

[2] [1992] 1 एस. सी. आर. 686.

लिए किए गए आवेदन को विनिश्चित करने की कार्यवाही की थी कि वे दसवीं अनुसूची के पैरा 3 के निबंधनानुसार मूल बी. एस. पी. से विभाजित हो गए हैं । उसने यह निवेदन किया कि दसवीं अनुसूची के अधीन किसी कार्यवाही में ऐसा कोई पृथक् विनिश्चय करना अनुध्यात नहीं था चूंकि विभाजन का दावा केवल दल परिवर्तन के आधार पर निरर्हता के लिए दावे की प्रतिरक्षा करने की प्रकृति का था और अध्यक्ष इस प्रश्न का न्यायनिर्णयन दल परिवर्तन के प्रश्न को विनिश्चित करते समय ही कर सकता था कि क्या विभाजन का कोई दावा साबित किया गया है अथवा नहीं । जब अध्यक्ष द्वारा केवल विभाजन के प्रश्न पर स्वतंत्र विनिश्चय किया जाना तात्पर्यित हो तब वह विनिश्चय संविधान की दसवीं अनुसूची के बाहर किया गया विनिश्चय होगा और परिणामस्वरूप अध्यक्ष के विनिश्चय को उच्च न्यायालय के समक्ष किसी अन्य प्राधिकारी के विनिश्चय की तरह संविधान के अनुच्छेद 226 और अनुच्छेद 227 की स्वीकृत सीमाओं के भीतर चुनौती दी जा सकती है । दूसरे शब्दों में, उसके अनुसार दसवीं अनुसूची के पैरा 6(1) के अधीन प्रदत्त सशर्त अंतिमता इस मामले में अध्यक्ष के आदेश को उपलब्ध नहीं थी ।

24. 37 विधायकों की ओर से यह दलील दी गई है कि दसवीं अनुसूची के पैरा 3 और 4 को मात्र पैरा 2 के बचाव और दल परिवर्तन के इस अभिकथन के रूप में वर्णित करना सही नहीं है कि पैरा 3 और पैरा 4 द्वारा अध्यक्ष को उन पैराओं के अधीन किए गए दावे को विनिश्चित करने की स्वतंत्र शक्ति प्रदान की गई है । यह निवेदन किया गया है कि इससे पूर्व कि अध्यक्ष विभाजन के दावे या विलय के दावे को प्रतिरक्षा के रूप में विनिश्चित कर सके या उसका उत्तर दे सके, पैरा 6 का अवलंब लेना और यह दलील देना न्यायोचित नहीं था कि दल परिवर्तन के आधार पर निरर्हता का प्रश्न अवश्य उद्भूत होना चाहिए । अध्यक्ष द्वारा दसवीं अनुसूची के पैरा 3, पैरा या पैरा 2 के निबंधनानुसार जो भी विनिश्चय किए जाएं उन्हें दसवीं अनुसूची के पैरा 6 में यथा-उपबंधित सशर्त उन्मुक्ति प्राप्त होगी ।

25. संविधान के अनुच्छेद 102 के उप-अनुच्छेद (2) और अनुच्छेद 191 पुरःस्थापित किए जाने के संदर्भ में, संविधान की दसवीं अनुसूची के अधीन की जाने वाली कार्यवाही यह विनिश्चित करने वाली कार्यवाही होती है कि क्या कोई सदस्य दल परिवर्तन के आधार पर संसद् या विधानसभा के सदस्य के रूप में अपनी स्थिति धारित करने के लिए निरर्हित हो गया है अथवा नहीं । दसवीं अनुसूची का अर्थान्वयन संविधान के अनुच्छेद 102

और अनुच्छेद 191 और उन अनुच्छेदों के उद्देश्य को अलग रखकर नहीं किया जा सकता । दल परिवर्तन को एक निरर्हता के रूप में जोड़ा गया है और दसवीं अनुसूची में दल परिवर्तन के आधार पर निरर्हता के बारे में उपबंध अंतर्विष्ट हैं । दसवीं अनुसूची के अधीन कार्यवाही अध्यक्ष के समक्ष इस संबंध में शिकायत किए जाने पर आरंभ होती है कि किसी राजनीतिक दल के कतिपय सदस्य दल परिवर्तन के आधार पर निरर्हताग्रस्त हो गए हैं । इस प्रकार किए गए दावे का विरोध करने के लिए संसद् या विधानसभा के उन सदस्यों के पास, जिनके विरुद्ध कार्यवाहियां आरंभ की जाती हैं, यह दर्शित करने का अधिकार होता है कि मूल राजनीतिक दल में विभाजन हो गया है और वे उस विधायक दल के सदस्यों का एक-तिहाई गठित करते हैं या यह कि उस दल का एक अन्य राजनीतिक दल में विलय हो गया है और इसलिए पैरा 2 लागू नहीं होता है । अनुच्छेद 102 और अनुच्छेद 191 तथा दसवीं अनुसूची के स्कीम के आधार पर विभाजन या विलय के प्रश्न के अवधारण को अध्यक्ष के समक्ष उस समावेदन से अलग नहीं रखा जा सकता जिसमें संबंधित सदस्य या सदस्यों की निरर्हता की ईप्सा की जाती है । इसलिए, इस तर्क को स्वीकार करना संभव नहीं है कि संविधान की दसवीं अनुसूची के अधीन अध्यक्ष के पास यह विनिश्चित करने की स्वतंत्र शक्ति है कि किसी राजनीतिक दल में संविधान की दसवीं अनुसूची के पैरा 3 और पैरा 4 द्वारा यथा-अनुध्यात कोई विभाजन या विलय हुआ है । संसद् या विधानसभा में किसी पृथक् समूह को मान्यता प्रदान करने की शक्ति सदन के कामकाज के नियमों के आधार पर अध्यक्ष में निहित है । किन्तु यह ऐसा कहने से भिन्न है कि उसके द्वारा अवधारित किए जाने वाले इस दावे के अतिरिक्त कि कोई सदस्य या कई सदस्य दल परिवर्तन के कारण निरर्हताग्रस्त हो गए हैं, उसे संविधान की दसवीं अनुसूची के अधीन शक्ति उपलब्ध है । इस सीमा तक, प्रस्तुत मामले में अध्यक्ष के विनिश्चय को संविधान की दसवीं अनुसूची के निबंधनों के अनुसार आदेश नहीं समझा जा सकता । अध्यक्ष उस प्रश्न पर जिसे विनिश्चित करने की उससे अपेक्षा की गई थी, विनिश्चय को मुल्तवी करके उस प्रश्न का विनिश्चय करने में असफल रहा है । बी. एस. पी. के विद्वान काउन्सेल की इस दलील में कुछ गुणागुण है कि अध्यक्ष के आदेश को संविधान की दसवीं अनुसूची के पैरा 6(1) के निबंधनों के अनुसार पूर्ण उन्मुक्ति प्राप्त नहीं है और यह कि यदि उसे पूर्ण उन्मुक्ति प्राप्त थी तो भी

प्रश्नगत आदेश में हस्तक्षेप करने की अपेक्षा करने के लिए **किहोतो होलोहन**[1] वाले मामले में इस न्यायालय द्वारा मान्यताप्राप्त न्यायिक पुनर्विलोकन की शक्ति पर्याप्त है ।

26. इसका अभिप्राय यह है कि इस मामले में यह पहलू इतना अधिक महत्वपूर्ण नहीं हो सकता चूंकि 37 विधायकों की ओर से अंगीकृत आधार को ध्यान में रखते हुए अध्यक्ष द्वारा उस याचिका को लंबित रखना न्यायोचित था जिसमें 13 विधायकों की निरर्हता की ईप्सा की गई थी जबकि उसने बी. एस. पी. में विभाजन के मामले को स्वीकार करने की कार्यवाही की । वास्तव में, प्रश्न यह है कि क्या अध्यक्ष का ऐसा करना न्यायोचित था । जैसा कि हमने ऊपर उपदर्शित किया है, संविधान की दसवीं अनुसूची के अधीन संपूर्ण कार्यवाही संदन के किसी सदस्य की निरर्हता के भागस्वरूप आरंभ की जाती है या आरंभ हो जाती है । वह निरर्हता दल परिवर्तन के कारण होती है । विभिन्न विधानमंडलों द्वारा, जिसमें उत्तर प्रदेश विधानमंडल भी है, विहित नियमों में अध्यक्ष को तब आवेदन करना अनुध्यात है जब इस संबंध में शिकायत हो कि कुछ सदस्यों ने दल में अपनी सदस्यता स्वेच्छा से छोड़ दी है । दसवीं अनुसूची के निबंधनानुसार केवल तभी अध्यक्ष से यह अपेक्षा की जाती है कि वह अपने समक्ष उठाए गए निरर्हता के प्रश्न को दसवीं अनुसूची के पैरा 6 के संदर्भ में विनिश्चित करे । इस दावे से निरपेक्ष रहते हुए कि किसी व्यक्ति को निरर्हित किया जाना है, दसवीं अनुसूची या उसके अधीन बनाए गए नियमों की स्कीम में यह अनुध्यात नहीं है कि अध्यक्ष इस संबंध में कोई स्वतंत्र जांच आरंभ करे कि क्या किसी राजनीतिक दल में कोई विभाजन हुआ है या कोई विलय हुआ है । इसलिए, अनुच्छेद 102 और अनुच्छेद 191 तथा संविधान की दसवीं अनुसूची की स्कीम के संदर्भ में हमें यह अभिनिर्धारित करने में कोई हिचकिचाहट नहीं है कि अध्यक्ष दसवीं अनुसूची के पैरा 2 के निबंधनों के अनुसार उसके समक्ष निरर्हता संबंधी दावा किए जाने पर ही कार्यवाही करता है ।

27. जैसा कि **किहोतो होलोहन** वाले मामले में स्पष्ट किया गया है, अध्यक्ष को आवश्यक रूप से निरर्हता संबंधी उस प्रश्न का विनिश्चय अधिकरण के रूप में करना होता है । किसी सदस्य के विरुद्ध उसे निरर्हित करने संबंधी ऐसे दावे के संदर्भ में उस सदस्य को, इस अभिवाक् के

---

[1] [1992] 1 एस. सी. आर. 686.

अतिरिक्त कि उसने दल की अपनी सदस्यता स्वेच्छा से नहीं छोड़ी है या उसने जारी की गई व्हिप्र की अवज्ञा नहीं की है, यह दर्शित करने का अधिकार भी है कि मूल राजनीतिक दल में विभाजन हुआ है और उस विभाजन के परिणामस्वरूप अन्य विधायक भी विधायक दल से अलग हो गए हैं, यह कि वे सब उस दल की टिकट पर निर्वाचित कुल विधायकों की संख्या का एक-तिहाई गठित करते हैं । उसे यह अभिवाक् करने का भी अधिकार प्राप्त है कि उसके दल का दसवीं अनुसूची के पैरा 4 के निबंधनों के अनुसार एक अन्य दल में विलय हो गया है । चाहे इसे प्रतिरक्षा या और कुछ कहा जाए, दसवीं अनुसूची के पैरा 3 के अधीन, जैसा कि वह उसका लोप किए जाने से पूर्व विद्यमान था, या पैरा 4 के अधीन दावे वास्तव में सदस्य को दल परिवर्तन के आधार पर विधानमंडल से निरर्हित करने संबंधी प्रार्थना के उत्तर हैं । इसलिए, ऐसे किसी मामले में जिसमें किसी विधायक दल या विधायक दल के नेता द्वारा अध्यक्ष के समक्ष इस बारे में समावेदन किया जाता है कि कतिपय व्यक्तियों को इस आधार पर निरर्हित घोषित किया जाए कि उन्होंने दल परिवर्तन कर लिया है, वहां वे निश्चित रूप से यह अभिवाक् करने के लिए स्वतंत्र होंगे कि वे इस तथ्य के आधार पर दल परिवर्तन के लिए दोषी नहीं है कि मूल राजनीतिक दल में विभाजन हो गया है और वे विधायकों की अपेक्षित संख्या गठित करते हैं या कोई विलय हो गया है । उस संदर्भ में, अध्यक्ष यह नहीं कह सकता कि वह पहले एक प्राधिकारी के रूप इस बात का विनिश्चय करेगा कि क्या कोई विभाजन या विलय हुआ था और उसके बाद अधिकरण के रूप में कार्य करते हुए न्यायिक अधिनिर्णय के तौर पर इस प्रश्न का विनिश्चय करेगा कि क्या सदस्य निरर्हताग्रस्त हो गए हैं । यह किसी सदस्य या किन्हीं सदस्यों को निरर्हित करने संबंधी दावे पर विचार करते समय उस प्रश्न को न केवल शिकायतकर्ता द्वारा किए गए अभिवाक् के संदर्भ में बल्कि उन व्यक्तियों द्वारा किए गए अभिवाक् के संदर्भ में भी, जिन्हें निरर्हित करने की ईप्सा की जाती है, उस प्रश्न को विनिश्चित करने के लिए अधिकरण के रूप में उसकी अधिकारिता का भाग है कि वे दल में विभाजन के आधार पर या विलय को ध्यान में रखते हुए निरर्हता से ग्रस्त नहीं हो गए हैं ।

28. यह दलील देने के लिए **प्रकाश सिंह बादल** बनाम **भारत संघ और अन्य**[1] वाले मामले में पंजाब-हरियाणा उच्च न्यायालय की पूर्ण

[1] ए. आई. आर. 1987 पंजाब और हरियाणा 263.

न्यायपीठ के विनिश्चय का अवलंब लिया गया कि अध्यक्ष को भारत के संविधान की दसवीं अनुसूची के निबंधनानुसार विनिश्चय करने की अधिकारिता केवल तभी प्राप्त होती है जब उसके पैरा 6 के निबंधनों के अनुसार उसके समक्ष निरर्हता संबंधी कोई प्रश्न उद्भूत होता है । पूर्ण न्यायपीठ ने बहुमत द्वारा निम्नलिखित रूप में अभिनिर्धारित किया:–

> "पैरा 6 के अधीन अध्यक्ष को इस मामले में केवल तभी अधिकारिता प्राप्त होगी यदि इस बारे में कोई प्रश्न उद्भूत होता है कि क्या सदन का कोई सदस्य उक्त अनुसूची के अधीन निरर्हता से ग्रस्त हो गया है और वह मामला विनिश्चय के लिए उसे निर्दिष्ट किया गया है । स्पष्टतः, निर्देश की अपेक्षा करने का प्रयोजन यह है कि जब भी किसी सदस्य की निरर्हता के लिए कोई प्रश्न उद्भूत होता है अध्यक्ष स्वतः संज्ञान करने के लिए विवर्जित होता है और वह उस मामले पर केवल तभी कार्यवाही करेगा जब किसी हितबद्ध व्यक्ति द्वारा उसे कोई प्रश्न निर्दिष्ट किया जाता है । अध्यक्ष को इस स्पष्ट कारण से स्वतः कोई शक्ति प्रदान नहीं की गई है कि उसे किसी दल का व्यक्ति नहीं माना जाता है और उसे न्यायिक रूप से कार्य करने और परस्पर-विरोधी समूहों के बीच विवाद को विनिश्चित करने की अधिकारिता सौंपी जाती है । पैरा 6 के अधीन अध्यक्ष की अधिकारिता का अवलंब लेने के लिए अन्य पूर्वापेक्षा यह है कि किसी सदस्य की निरर्हता से संबंधित प्रश्न विद्यमान होना चाहिए । ऐसा प्रश्न केवल एक प्रकार उद्भूत हो सकता है, अर्थात्, यह कि कोई सदस्य अभिकथित रूप से पैरा 2(1) में प्रगणित निरर्हता से ग्रस्त हो जाता है और कोई हितबद्ध व्यक्ति अध्यक्ष से यह घोषणा करने के लिए आवेदन करता है कि उक्त सदस्य सदन का सदस्य बने रहने के लिए निरर्हित हो गया है और उस दावे का संबंधित सदस्य द्वारा खंडन किया जाता है ।"

37 विधायकों की ओर से यह तर्क दिया गया था कि पूर्ण न्यायपीठ द्वारा अंगीकृत यह स्थिति विधि की दृष्टि से सही स्थिति प्रतिबिंबित नहीं करती है चूंकि दसवीं अनुसूची में ऐसी कोई बात नहीं है जो अध्यक्ष को अनुसूची के पैरा 2 के निबंधनों के अनुसार उसके समक्ष उद्भूत होने वाले किसी प्रश्न को पृथक् करते हुए या तो अनुसूची के पैरा 3 के अधीन या अनुसूची के पैरा 4 के अधीन किसी दावे की बाबत अधिनिर्णय करने से प्रवारित करती है । संविधान के अनुच्छेद 102 और अनुच्छेद 191 तथा पैरा 6 की

भाषा और उसके अधीन अध्यक्ष को अधिकारिता प्रदान करने के संदर्भ में दसवीं अनुसूची की स्कीम पर विचार करते हुए, हम यह दृष्टिकोण अपनाने के लिए बाध्य हैं कि उपर्युक्त विनिश्चय में पंजाब और हरियाणा उच्च न्यायालय द्वारा दसवीं अनुसूची की परिधि के बारे में बहुमत द्वारा अंगीकृत स्थिति सही विधिक स्थिति प्रतिबिंबित करती है । दसवीं अनुसूची के अधीन अध्यक्ष से पहले अनुसूची के पैरा 6 के निबंधनों के अनुसार निरर्हता के प्रश्न को विनिश्चित करने के संबंध में अधिकारिता अर्जित किए बिना अनुसूची के पैरा 3 और पैरा 4 के अधीन मात्र कोई दावा ग्रहण करने की प्रत्याशा नहीं की जाती है । संविधान की दसवीं अनुसूची में ऐसी कोई शक्ति नहीं पाई जा सकती, जिसका प्रयोग वह अन्यथा स्वतंत्र रूप से किसी समूह या विलय को मान्यता प्रदान करने के लिए कर सकेगा । दसवीं अनुसूची के अधीन ऐसा करने की शक्ति केवल तभी प्रोद्भूत होती है जब उससे उस अनुसूची के पैरा 6 में निर्दिष्ट प्रश्न को विनिश्चित करने की अपेक्षा की जाती है ।

29. प्रस्तुत मामले में, अध्यक्ष के पास बी. एस. पी. के 13 सदस्यों की निरर्हता के लिए उसके समक्ष फाइल की गई याचिका थी । जब वह आवेदन उसके समक्ष लंबित था, तब बी. एस. पी. के कतिपय सदस्यों ने उसके समक्ष यह दावा किया कि बी. एस. पी. में विभाजन हो गया है । अध्यक्ष को दसवीं अनुसूची और उस निमित्त विरचित नियमों की स्कीम के आधार पर निरर्हता के लिए किए गए आवेदन को विनिश्चित करना था और उसे विनिश्चित करते समय इस बात का भी विनिश्चय करना था कि क्या दसवीं अनुसूची के पैरा 3 को ध्यान में रखते हुए निरर्हता के लिए दावा नामंजूर किया जाना है । हमें इस संबंध में कोई संदेह नहीं है कि अध्यक्ष ने 37 विधायकों के इस दावे का उत्तर देने के प्रयास में कि दल में कोई विभाजन हुआ है अथवा नहीं, अपने आप पूर्णतः गलत रास्ता अपनाया, जबकि उसने एक आवेदन द्वारा, जो कि पहले ही उसके समक्ष लंबित था, उसके समक्ष उठाए गए निरर्हता के प्रश्न को अनिर्णीत छोड़ दिया । अध्यक्ष की ओर से ऐसे आवेदन को, जिसमें निरर्हता के लिए ईप्सा की गई है, विनिश्चित करने में हुई इस असफलता के बारे में यह नहीं कहा जा सकता कि वह मात्र प्रक्रिया के अंतर्गत हुई है । यह संविधान के अनुच्छेद 102 और अनुच्छेद 191 के संदर्भ में पठित दसवीं अनुसूची द्वारा अनुध्यात अधिनिर्णय की सांविधानिक स्कीम के ही विरुद्ध है । यह उस निमित्त विरचित नियमों और उस प्रक्रिया के भी विरुद्ध है जिसका अनुपालन करने

की उससे प्रत्याशा थी । इसलिए, 37 विधायकों द्वारा दिए गए इस तर्क को स्वीकार करना संभव नहीं है कि अध्यक्ष द्वारा निरर्हता संबंधी याचिका का विनिश्चय कम से कम उनके द्वारा विभाजन को मान्यता देने के लिए फाइल की गई याचिका के साथ-साथ करने में हुई असफलता मात्र प्रक्रियात्मक अनियमितता है । हमें यह निष्कर्ष निकालने में कोई हिचकिचाहट नहीं है कि वह अधिकारिता संबंधी अवैधता है, एक ऐसी अवैधता जो अध्यक्ष द्वारा उसके समक्ष प्रस्तुत किए गए विभाजन के प्रश्न के संबंध में किए गए तथाकथित विनिश्चय की जड़ तक जाती है । **किहोतो होलोहन**[1] वाले मामले में और **जगजीत सिंह** बनाम **हरियाणा राज्य**[2] वाले मामले में अधिकथित न्यायिक पुनर्विलोकन की सीमाओं के भीतर यह निष्कर्ष निकाला जाना है कि न्यायिक पुनर्विलोकन की शक्ति का प्रयोग करते हुए अध्यक्ष का आक्षेपित विनिश्चय अपास्त किए जाने योग्य है ।

30. एक अन्य पहलू भी है । अध्यक्ष ने निरर्हता से संबंधित प्रश्न का अवधारण लंबित रखने के पश्चात् यह आदेश पारित किया कि उक्त याचिका पर उच्च न्यायालय द्वारा उसके समक्ष लंबित रिट याचिका के संबंध में विनिश्चय किए जाने के पश्चात् कार्यवाही की जाएगी और यह निदेश दिया कि उक्त याचिका को रिट याचिका का निपटारा होने के पश्चात् प्रस्तुत किया जाए । इसके बाद, अध्यक्ष ने अकस्मात्, किसी प्रकट कारण के बिना उस आवेदन पर कार्यवाही आरंभ की जबकि रिट याचिका अभी लंबित थी और उन 13 विधायकों द्वारा, जिन्हें निरर्हित करने की ईप्सा की गई है, किए गए इस आशय के तथाकथित प्रारंभिक आक्षेप को स्वीकार करने के आशय से कि उसके द्वारा 37 विधायकों के, जिनमें वे भी शामिल हैं, विभाजन को मान्यता प्रदान करने से वह आवेदन बेकार हो गया है, उस आवेदन को तारीख 7 सितम्बर, 2005 को खारिज कर दिया । यह अंतिम आदेश स्पष्ट रूप से अध्यक्ष के तारीख 14 नवम्बर, 2003 के पूर्ववर्ती आदेश से असंगत है और यह प्रश्न अनिर्णीत छोड़ देता है कि क्या निरर्हता की ईप्सा करने वाली याचिका इससे पहले या कम से कम विभाजन को मान्य ठहराने का दावा करने वाले आवेदन के साथ ही विनिश्चित नहीं की जानी चाहिए थी । यदि विभाजन को मान्यता प्रदान करने वाला आदेश समाप्त हो जाता है तो स्पष्ट रूप से यह अंतिम आदेश भी बना नहीं रह सकता । इसका समाप्त होना भी लाजिमी है ।

---

[1] [1992] 1 एस. सी. आर. 686.

[2] (2006) 13 स्केल 335.

31. दसवीं अनुसूची के पैरा 2 और पैरा 3 की परिधि विशेषकर समय के संबंध में पर्याप्त तर्क दिए गए थे और उन्हें सुसंगत समझा जाना चाहिए । जबकि बी. एस. पी. के नेता की ओर से यह दलील दी गई थी कि दायित्व या निर्योग्यता राजनीतिक दल की सदस्यता स्वेच्छा से छोड़ने के समय से उद्भूत होती है, उन 37 विधायकों के अनुसार, जिन्होंने सदस्यता छोड़ दी है, सुसंगत समय वह है जब अध्यक्ष निरर्हता के संबंध में किए गए अभिवाक् पर विनिश्चय करता है । उपर्युक्त के परिणामस्वरूप, एक पक्ष की ओर से यह दलील दी गई कि यदि उस दिन को जब निरर्हता उपगत हुई थी, पैरा 3 के निबंधनों के अनुसार कोई विभाजन नहीं हुआ था तो उन सदस्यों को, जिन्होंने दल में अपनी सदस्यता छोड़ दी थी निरर्हित घोषित किया जाना चाहिए तथा दूसरे पक्ष की ओर से यह तर्क दिया गया कि यदि अध्यक्ष द्वारा विनिश्चय किए जाने से पहले वे व्यक्ति, जिन्हें निरर्हित करने की ईप्सा की गई है, यह दर्शित करने में समर्थ हो जाते हैं कि मूल दल में विभाजन हुआ है और उस समय तक उनकी संख्या विधायक दल के सदस्यों का एक-तिहाई हो जाती है तो अध्यक्ष को आवश्यक रूप से विभाजन स्वीकार करना होगा और निरर्हता संबंधी याचिका खारिज करनी होगी । दूसरे शब्दों में, इस तर्क के अनुसार अध्यक्ष को निरर्हता के प्रश्न को विनिश्चित करते समय उसके द्वारा विनिश्चय किए जाने के समय तक की सभी घटनाओं को ध्यान में रखना चाहिए । वे उस बात को स्वीकार करने पर जोर दे रहे हैं जिसे उच्च न्यायालय के विद्वान मुख्य न्यायमूर्ति ने ऐसे व्यक्ति का द्रुत प्रभाव कहा है जो मूल दल से अपना संबंध-विच्छेद कर लेते हैं और बाद में कायर व्यक्तियों में शामिल हो जाते हैं और विनिश्चय को उनके द्वारा मूल दल से अभिकथित रूप से अपना संबंध-विच्छेद करने के प्रश्न तक सीमित नहीं करना चाहते ।

32. 37 विधायकों की ओर से यह दलील दी गई कि दल परिवर्तन के आधार पर निरर्हता को सच्ची राजनैतिक विसम्मति के विरुद्ध आसन्न संकट के रूप में माना जाना चाहिए और सच्ची राजनैतिक विसम्मति को रोकना ही वह उद्देश्य नहीं है जिसे दसवीं अनुसूची द्वारा पूरा करने की ईप्सा की गई है । इस निवेदन का समर्थन इस तर्क से करने की ईप्सा की गई है कि सुसंगत समय पर पैरा 3 में यह उपबंध था कि यदि मूल दल में विभाजन के आधार पर विधायक दल के एक-तिहाई सदस्यों ने मूल राजनीतिक दल की अपनी सदस्यता स्वेच्छा से छोड़ दी है तो उन्हें निरर्हित

नहीं किया जा सकता । **किहोतो होलोहन**[1] वाले मामले में की सुसंगत मताभिव्यक्तियों के प्रति निर्देश किया जाता है । यह भी उल्लेख किया जाता है कि पैरा 4 में, जिसे अभी भी बनाए रखा गया है, अपना दल छोड़ कर उस दल को एक अन्य राजनीतिक दल में विलय करना भी अनुध्यात है यद्यपि परिभाषा के आधार पर वह भी पैरा 2 के निबंधनों के अनुसार दल परिवर्तन की कोटि में आ सकता है ।

33. यह सही है कि दसवीं अनुसूची और संविधान के अनुच्छेद 102 के उप-अनुच्छेद (2) और अनुच्छेद 191 को अधिनियमित करने का आशय सामूहिक विसम्मति को दबाना नहीं है । किन्तु इसके साथ-साथ यह स्पष्ट है कि इनका उद्देश्य दल परिवर्तन को हतोत्साहित करना है जिसने लोकतंत्र के मूल आधार को कमजोर करके कष्टदायी आयाम धारित कर लिया है । इसलिए दसवीं अनुसूची के पैरा 3 और पैरा 4 की सन्निहिति में पैरा 2 का सोद्देश्य निर्वचन किए जाने की आवश्यकता है । एक बात तो स्पष्ट है कि दल परिवर्तन किसी सदस्य को सदन से निरर्हित करने के लिए एक आधार है । वह इस निरर्हता से तब ग्रस्त हो जाता है जब उसने अपने मूल राजनीतिक दल, अर्थात् उस दल की अपनी सदस्यता स्वेच्छा से छोड़ दी है जिसके टिकट पर वह सदन के लिए निर्वाचित हुआ था । किसी व्हिप की अवज्ञा करने की दशा में संबंधित दल को यह विकल्प दिया जाता है कि वह या तो अवज्ञा को माफ करे या संबंधित सदस्य को निरर्हित करने की ईप्सा करे । किन्तु माफ करने संबंधी विनिश्चय व्हिप की अवज्ञा किए जाने के 15 दिन के भीतर अवश्य किया जाना चाहिए । इस पहलू का भी यह दलील देने के लिए अवलंब लिया गया कि इस प्रश्न को अवधारित करने का सुसंगत समय वह होता है जब कि अध्यक्ष निरर्हता संबंधी अभिवाक् पर वास्तव में कोई विनिश्चय करता है ।

34. जैसा कि हमें प्रकट होता है, निरर्हता की कार्यवाही किसी सदस्य द्वारा किसी राजनीतिक दल की अपनी सदस्यता स्वेच्छा से छोड़ देने पर या उसे जारी की गई व्हिप की अवज्ञा करने के समय से उद्भूत होती है । इसलिए जो कार्य दसवीं अनुसूची के पैरा 2 के निबंधनों के अनुसार निरर्हता गठित करता है वह सदस्यता स्वेच्छा से छोड़ देने या व्हिप की अवज्ञा करने का कार्य है । इस तथ्य के आधार पर कि स्वेच्छा से सदस्यता छोड़ देने की दशा में अध्यक्ष द्वारा उस संबंध में विनिश्चय पश्चात्वर्ती समय

[1] [1992] 1 एस. सी. आर. 686.

पर किया जा सकता है, विधायक के कार्य द्वारा उसके निरर्हता से ग्रस्त होने को मुल्तवी नहीं किया जा सकता और न ही वह ऐसा करता है । इसी प्रकार, यह तथ्य भी कि दल किसी व्हिप की अवज्ञा को 15 दिन के भीतर माफ कर सकेगा या यह कि अध्यक्ष उन मामलों में उसके पश्चात् ही विनिश्चय करता है, निरर्हता के समय को उस समय से परे नहीं ले जा सकता जब व्हिप की अवज्ञा की जाती है । इसलिए बावनवें संशोधन द्वारा जिस उद्देश्य को पूरा करने की ईप्सा की गई है उसकी पृष्ठभूमि में और दसवीं अनुसूची के अन्य पैराओं के प्रति निर्देश करते हुए उसके पैरा 2 का सही अर्थान्वयन करने पर जो स्थिति उद्भूत होती है वह यह कि अध्यक्ष को निरर्हता के प्रश्न का विनिश्चय उस तारीख के प्रति निर्देश से करना होता है जिस तारीख को सदस्य अपनी सदस्यता स्वेच्छा से छोड़ देता है या व्हिप की अवज्ञा करता है । यह वास्तव में कार्योत्तर विनिश्चय है । इस तथ्य के परिणामस्वरूप कि पैरा 6 के निबंधनानुसार प्रश्न का विनिश्चय अध्यक्ष या सभापति द्वारा किया जाना होता है, यह निष्कर्ष नहीं निकलता कि इस प्रश्न का अवधारण अध्यक्ष के विनिश्चय की तारीख के प्रति निर्देश से ही करना होता है । उस प्रकृति का निर्वचन निरर्हता को अनिर्धारणीय समय तक और विनिश्चय करने वाले प्राधिकारी की मर्जी पर छोड़ देगा । इससे विधि को अधिनियमित करने का उद्देश्य ही विफल हो जाएगा । जहां तक संभव हो ऐसे निर्वचन से बचना चाहिए । इसलिए, हमारी यह राय है कि इस दलील को स्वीकार नहीं किया जा सकता कि अध्यक्ष के विनिश्चय पर ही निरर्हता उपगत होती है । इससे यह अभिप्रेत होगा कि विद्वान मुख्य न्यायमूर्ति ने जिसे द्रुत प्रभाव कहा है उसे अनदेखा करना होगा और प्रश्न का विनिश्चय उस तारीख के प्रति निर्देश से करना होगा जिस तारीख को अभिकथित रूप से विधायक दल की सदस्यता स्वेच्छा से छोड़ दी जाती है ।

35. अतः, प्रश्नगत मामले में यह प्रश्न उत्पन्न होगा कि क्या 27 अगस्त, 2003 को उन 13 सदस्यों ने, जो कि राज्यपाल से इस अनुरोध के साथ मिले थे कि समाजवादी पार्टी के नेता को सरकार बनाने के लिए आमंत्रित किया जाए, 27 अगस्त, 2003 को दल परिवर्तन कर लिया था और क्या उन्होंने अपना यह दावा साबित कर दिया है कि तारीख 26 अगस्त, 2003 को बहुजन समाज पार्टी में विभाजन हो गया था और उस दल के विधायक दल के एक-तिहाई सदस्य उस दल से अलग हो गए थे । यह उल्लेखनीय है कि रिट याचिका के प्रति-शपथपत्र में स्पष्ट रूप से और बार-बार यह अभिवाक् किया गया है कि विभाजन 26 अगस्त, 2003 को

हो गया था । अध्यक्ष के समक्ष विभाजन को मान्यता प्रदान करने के लिए याची का पक्षकथन भी यही था । तारीख 6 सितम्बर, 2003 को यथा-विद्यमान स्थिति, जब 37 विधायक अध्यक्ष के समक्ष उपस्थित हुए थे, निरर्हता के प्रश्न से सुसंगत नहीं होगी, जो कि अभिकथित रूप से तारीख 27 अगस्त, 2003 को उपगत हुई थी,

36. इस प्रश्न पर कि क्या पैरा 3 की अपेक्षाओं को पूरा करने के लिए मूल राजनीतिक दल में विभाजन का दावा करना पर्याप्त था या कम से कम प्रथमदृष्टया इसे साबित करना आवश्यक था, **जगजीत सिंह** बनाम **हरियाणा राज्य**[1] वाले उपर्युक्त मामले में किए गए विनिश्चय में विचार किया गया जो कि तीन न्यायाधीशों की न्यायपीठ द्वारा दिया गया था, जिसमें हम में से एक (न्यायमूर्ति बालासुब्रह्मण्यम) शामिल था । इस तर्क पर विचार करते हुए कि यह दर्शित करने के अतिरिक्त कि विधायक दल के एक-तिहाई सदस्यों ने एक पृथक् समूह गठित कर लिया था, मूल राजनीतिक दल में विभाजन का दावा करना ही पर्याप्त है, विद्वान मुख्य न्यायमूर्ति ने स्थिति को निम्नलिखित रूप में स्पष्ट किया :–

> "तथापि, याची के विद्वान काउन्सेल ने इस निवेदन के समर्थन में रवि एस. नायक [(1994) 1 एस. सी. आर. 754] वाले मामले में के निर्णय के पैरा 37 का अवलंब लिया कि केवल विभाजन के बारे में दावा किया जाना होता हैं और विभाजन को साबित करना आवश्यक नहीं है । उक्त मताभिव्यक्तियां निम्न प्रकार हैं –
>
> > 'प्रस्तुत मामले में प्रथम अपेक्षा पूरी हो गई थी क्योंकि नायक ने ऐसा दावा कर दिया है । एकमात्र प्रश्न यह है कि क्या दूसरी अपेक्षा पूरी की गई थी ।'
>
> जिन मताभिव्यक्तियों का अवलंब लिया गया है उनका मूल्यांकन अगले पैरा, अर्थात् पैरा 38 में जो कुछ कहा गया है उसके प्रकाश में किया जाना आवश्यक है, अर्थात् :–
>
> > 'इस बात का अवधारण अध्यक्ष द्वारा उसके समक्ष प्रस्तुत की गई सामग्री के आधार पर किया जाना है कि क्या कोई विभाजन हुआ था अथवा नहीं ।'
>
> उपर्युक्त के अलावा इस दलील को स्वीकार करने से कि पैरा 3 की

---

[1] (2006) 13 स्केल 335.

अपेक्षाओं को पूरा करने के लिए केवल दावा किया जाना होता है, इस मूल सिद्धांत के अलावा बेतुके परिणाम निकलेंगे कि जो कोई भी दावा करता है उसे वह दावा साबित भी करना होता है । इससे यह भी अभिप्रेत होगा कि जब किसी सदस्य द्वारा पैरा 3 का फायदा प्राप्त करने के लिए अध्यक्ष के समक्ष विभाजन के बारे में कोई दावा किया जाता है तब अध्यक्ष को दावे की यथार्थता और सद्भाविकता के बारे में प्रथमदृष्ट्या संतुष्ट हुए बिना ही उसे स्वीकार करना होगा । इससे यह भी अभिप्रेत होगा कि मूल राजनीतिक दल के विभाजन का तुच्छ दावा करके भी किसी सदस्य के बारे में यह कहा जा सकता है कि उसने पैरा 3 के अनुबंध को पूरा कर दिया है । इस व्यापक प्रतिपादना को स्वीकार करने से दल परिवर्तन संबंधी इस विधि का उद्देश्य ही विफल हो जाएगा कि राजनीतिक दल-परिवर्तन की बुराई से सख्ती से निपटना चाहिए । हमारा यह मत है कि पैरा 3 के प्रयोजनों के लिए मात्र दावा करना पर्याप्त नहीं है । अध्यक्ष के समक्ष ऐसे विभाजन का प्रथमदृष्टया सबूत पेश करना आवश्यक है जिससे कि उसका यह समाधान हो सके कि ऐसा विभाजन हुआ है ।"

37. इस प्रकार, उपर्युक्त विनिश्चय में यह स्पष्ट किया गया है कि यह दर्शित करने के अतिरिक्त कि विधायक दल के एक-तिहाई सदस्य दल से अलग हो गए हैं, मूल दल में विभाजन का दावा करना ही पर्याप्त नहीं है बल्कि उसे कम से कम प्रथमदृष्ट्या साबित करना भी आवश्यक है । जिन सदस्यों ने दल छोड़ दिया है उन्हें प्रथमदृष्ट्या सुसंगत सामग्री द्वारा यह दर्शित करना होगा कि मूल दल में कोई विभाजन हुआ है । इसलिए इस तर्क को स्वीकार नहीं किया जा सकता कि 37 विधायकों से केवल यह अपेक्षित था कि वे अध्यक्ष के समक्ष यह दावा करते कि मूल दल में विभाजन हो गया है और यह दर्शित करें कि विधायक दल के एक-तिहाई सदस्य उस दल से बाहर हो गए हैं और यह कि उन्हें मूल राजनीतिक दल में हुए विभाजन के समर्थन में कोई सामग्री प्रस्तुत करने की आवश्यकता नहीं है । यह तर्क हमें आकर्षित नहीं करता कि **जगजीत सिंह**[1] वाले मामले में के विनिश्चयाधार पर पुनर्विचार करने की आवश्यकता है । **रवि एसं. नायक**[2] वाले मामले में के निर्णय पर विचार करते हुए यह नहीं कहा जा सकता था कि विद्वान न्यायाधीशों ने यह अभिनिर्धारित किया है कि उस

[1] (2006) 13 स्केल 335.

[2] [1994] 1 एस. सी. आर. 754.

निमित्त मात्र दावा करना ही पर्याप्त है । जैसा कि **जगजीत सिंह**[1] वाले मामले में इंगित किया गया है, **रवि एस. नायक**[2] वाले मामले में के निर्णय के पैरा 37 के वाक्य को अलग नहीं पढ़ा जा सकता और इसे **जगजीत सिंह**[1] वाले उपर्युक्त मामले में उद्धृत पैरा 38 के सुसंगत वाक्य के साथ पढ़ा जाना चाहिए ।

38. इस तर्क को स्वीकार करना पैरा 3 के विनिर्दिष्ट निबंधनों के प्रतिकूल होगा कि विधायकों की दो प्रास्थितियां हैं, एक मूल राजनीतिक दल के सदस्यों के रूप में और दूसरी विधानमंडल के सदस्यों के रूप में और मूल दल में विभाजन संबंधी निष्कर्ष निकालने या विभाजन की अभिधारणा करने के लिए यह दर्शित करना पर्याप्त होगा कि एक-तिहाई विधायकों ने पृथक् समूह बना लिया है । उस पैरा में दो अपेक्षाओं का वर्णन है, एक यह कि मूल दल में विभाजन हुआ है तथा दूसरी यह कि एक-तिहाई विधायकों का समूह विधायक दल से अलग हो गया है । दो प्रास्थितियों के सिद्धांत को स्वीकार करने से पैरा 3 का एक भाग अनावश्यक या निष्प्रभावी हो जाएगा । जहां तक संभव हो, उस प्रकृति के निर्वचन से बचना होगा । ऐसा निर्वचन करना संदर्भ में अपेक्षित नहीं है । यह प्रकल्पित करना भी अनुज्ञेय नहीं है कि संसद् ने जिन शब्दों का प्रयोग किया है वे अनावश्यक या अर्थहीन हैं । इसलिए, हम इस अभिवाक् का खंडन करते हैं कि मूल राजनीतिक दल में विभाजन को पृथक् से साबित करना आवश्यक नहीं है यदि यह दर्शित कर दिया जाता है कि विधायक दल में विभाजन हो गया है ।

39. 37 विधायकों की ओर से न्यायिक पुनर्विलोकन की परिधि सीमित होने के कारण उस पर यह दलील देने के लिए बार-बार जोर दिया गया था कि अधिकांश उच्च न्यायालयों ने अपनी अधिकारिता के बाहर कार्य किया है । दसवीं अनुसूची के अधीन अध्यक्ष के किसी आदेश का न्यायिक पुनर्विलोकन करने की परिधि के बारे में विचार करते हुए **किहोतो होलोहन**[3] वाले मामले में निम्नलिखित रूप में अभिनिर्धारित किया गया था :–

"प्रस्तुत मामले में, पैरा 6(1) के अधीन विवादित निरर्हता

---

[1] (2006) 13 स्केल 335.

[2] [1994] 1 एस. सी. आर. 754.

[3] [1992] 1 एस. सी. आर. 686.

2007(2) eILR(PAT) SC 1

विनिश्चित करने की शक्ति उत्कृष्ट रूप से न्यायिक स्वरूप की है ।

39. वास्तव में, पैरा 6(2) की कल्पना इसे यथास्थिति, अनुच्छेद 122 के प्रथम खंड या अनुच्छेद 212 में रखती है । पैरा 6(2) में आने वाले 'संसद् की कार्यवाहियां' या "राज्य के विधानमंडल की कार्यवाहियां" शब्दों वाली तत्स्थानी अभिव्यक्तियां क्रमशः अनुच्छेद 122(1) और अनुच्छेद 212(1) में हैं । यह प्रक्रिया-संबंधी मात्र अनियमितताओं से उन्मुक्ति प्रदान करती है ।

इसके अतिरिक्त, वर्ष 1986 के पश्चात् भी, जब दसवीं अनुसूची पुरःस्थापित की गई थी, संविधान में अनुच्छेद 191(1) और अनुच्छेद 102(1) के अधीन सदस्यों की निरर्हता के बारे में विवादों का निपटारा करने के लिए अनुच्छेद 122 या अनुच्छेद 212 का अवलंब लेने संबंधी आशय प्रदर्शित नहीं होता था । उसी धारणा उपबंध में यह विवक्षित है कि निरर्हता संबंधी कार्यवाहियां वास्तव में सदन के समक्ष नहीं की जाती है बल्कि विशेष रूप से पदाभिहित प्राधिकारी, अर्थात्, अध्यक्ष के समक्ष ही की जाती हैं । पैरा 6(1) के अधीन विनिश्चय सदन का विनिश्चय नहीं होता और न ही वह सदन के अनुमोदन के अध्यधीन होता है । वह विनिश्चय सदन के बिना स्वतंत्र रूप से प्रवर्तित होता है । कोई धारणा उपबंध अपने सृजन द्वारा स्वयं अपनी शक्ति के परे नहीं जा सकता । इसलिए, दसवीं अनुसूची के पैरा 6(1) के अधीन शक्ति का प्रयोग करते हुए अध्यक्ष या सभापति द्वारा किया गया विनिश्चय अनुच्छेद 122 और अनुच्छेद 212 के अधीन न्यायिक संवीक्षा से उन्मुक्त नहीं है ।"

सुसंगत पहलुओं के प्रति निर्देश करने के पश्चात् यह अभिनिर्धारित किया गया था :—

"अधिकरण गठित करने वाली इन सुज्ञात और स्वीकृत कसौटियों द्वारा, दसवीं अनुसूची के पैरा 6(1) के अधीन कार्य करने वाला अध्यक्ष या सभापति अधिकरण होता है ।"

यह निष्कर्ष निकाला गया :—

"ऊपर निर्दिष्ट विनिश्चयों और पैरा 6 के अधीन अध्यक्ष/सभापति द्वारा किए जाने वाले कृत्य की प्रकृति को ध्यान में रखते हुए, पैरा 6 के अधीन अध्यक्ष/सभापति द्वारा पारित किसी आदेश की बाबत

संविधान के अनुच्छेद 136 और अनुच्छेद 226 तथा 227 के अधीन न्यायिक पुनर्विलोकन की परिधि केवल अधिकारिता संबंधी त्रुटियों, अर्थात् सांविधानिक आज्ञा के अतिक्रमण, असद्भाविकता, नैसर्गिक न्याय और औचित्य संबंधी नियमों के अननुपालन पर आधारित कमियों तक सीमित होगी ।"

इसी स्थिति को **राजा राम पाल** बनाम **माननीय अध्यक्ष लोक सभा और अन्य**[1] वाले मामले में संविधान न्यायपीठ द्वारा दोहराया गया । हमारा यह मत है कि हस्तक्षेप की रूपरेखा **किहोतो होलोहन**[2] वाले मामले में भली प्रकार से प्रस्तुत की गई है और यहां केवल उसे लागू करना ही अंतर्वलित है ।

40. प्रस्तुत मामले पर विचार करते हुए यह स्पष्ट है कि अध्यक्ष ने मूल आदेश में निरर्हता के प्रश्न को अविनिश्चित छोड़ दिया । इस प्रकार वह दसवीं अनुसूची के पैरा 6 द्वारा उसे प्रदत्त की गई अधिकारिता का प्रयोग करने में असफल रहा । अधिकारिता का प्रयोग करने में हुई इस असफलता को अनुसूची के पैरा 6 के संरक्षण के अंतर्गत नहीं माना जा सकता । उसने विभाजन के बारे में किए गए मात्र दावे के आधार पर विभाजन को स्वीकार करने की भी कार्यवाही की । उसने इस संबंध में कोई निष्कर्ष नहीं निकाला कि क्या मूल राजनीतिक दल में विभाजन को प्रथमदृष्ट्या साबित किया गया था अथवा नहीं । उसकी यह कार्यवाही प्रकट रूप से **रवि एस. नायक**[3] वाले मामले में के विनिश्चयाधार के बोध पर आधारित है । उसने उस मामले के विनिश्चयाधार को गलत समझा । अब हमने **जगजीत सिंह**[4] वाले मामले में के तर्काधार और दृष्टिकोण का अनुमोदन कर दिया है और उस मामले का विनिश्चयाधार स्पष्ट है, इसलिए यह अभिनिर्धारित किया जाना चाहिए कि अध्यक्ष ने ऐसी गलती की है जो मामले की जड़ तक जाती है या ऐसी गलती की है जो कि इतनी मूलभूत है कि सीमित न्यायिक पुनर्विलोकन के अधीन भी अध्यक्ष के आदेश में हस्तक्षेप किया जाना चाहिए । अतः, हमें उच्च न्यायालय के बहुमत वाले उस निर्णय से सहमत होने में कोई हिचकिचाहट नहीं है जिसके द्वारा अध्यक्ष के विनिश्चयों को अभिखंडित किया गया था ।

---

[1] जे. टी. 2007 (2) एस. सी. 1.

[2] [1992] 1 एस. सी. आर. 686.

[3] [1994] 1 एस. सी. आर. 754.

[4] (2006) 13 स्केल 335.

41. हमारे उपर्युक्त निष्कर्षों को ध्यान में रखते हुए उन तर्कों के आधार पर, जिन्हें महत्वपूर्ण तथ्यों के रूप में वर्णित किया गया है और रिट याचिका में किए गए संशोधन की अभिकथित विलंबकारिता के आधार पर कोई भी अंतर नहीं पड़ता । यह निर्विवाद्य है कि उस आदेश में जिसे रिट याचिका में आरंभ में चुनौती दी गई थी, अध्यक्ष 13 विधायकों की निरर्हता की ईप्सा करने वाली याचिका को विनिश्चित करने में विनिर्दिष्ट रूप से विरत रहा । हमारे पूर्वोक्त तर्काधार के कारण स्पष्ट रूप से ऐसी त्रुटि हुई थी जिसके कारण उच्च न्यायालय को न्यायिक पुनर्विलोकन की अपनी शक्ति का प्रयोग करते हुए अधिकारिता का प्रयोग करना पड़ा ।

42. इसके बाद प्रश्न यह है कि क्या उच्च न्यायालय की खंड न्यायपीठ के बहुमत वाले न्यायाधीशों द्वारा कार्यवाही को अध्यक्ष को प्रतिप्रेषित करना आवश्यक था या इस संबंध में कोई विनिश्चय किया जा सकता था कि क्या 13 सदस्य निरर्हित हो गए हैं अथवा नहीं और यदि उन्हें निरर्हित पाया जाता तो 37 विधायकों में से शेष 24 विधायक भी निरर्हित हो गए होते चूंकि उस दशा में, जैसा कि उनके द्वारा दावा किया गया है, पृथक् समूह गठित करने वाले विधायक दल के एक-तिहाई सदस्य नहीं रहेंगे । बहुजन समाज पार्टी की ओर से यह दलील दी गई है कि यह दर्शित करने के लिए बिल्कुल भी कोई सामग्री नहीं है कि जैसा कि 37 सदस्यों द्वारा दावा किया गया है; 26 अगस्त, 2003 को दल की कोई बैठक हुई थी और यह दर्शित नहीं किया गया है कि मूल राजनीतिक दल का कोई कन्वेंशन हुआ था या उसमें उस दल के कुछ सदस्यों ने दल का विभाजन करने या दल छोड़ने संबंधी कोई विनिश्चय किया था । यह भी इंगित किया गया है कि अभिकथित बैठक की कोई कार्य-सूची या अभिकथित बैठक का कोई कार्यवृत्त प्रस्तुत नहीं किया गया था । अन्य कोई सामग्री भी प्रस्तुत नहीं की गई थी । तारीख 6 सितम्बर, 2003 से पहले भी, जब अध्यक्ष के समक्ष विभाजन का दावा किया गया था और 26 अगस्त, 2003 को, जब विभाजन होने का दावा किया गया था, 37 विधायकों में से 24 विधायक विधानसभा में बहुजन समाज पार्टी के साथ बैठे थे और इस बात से ही यह दर्शित होगा कि 27 अगस्त, 2003 को कोई विभाजन नहीं हुआ था, जैसा कि अब दावा किया गया है । यह भी इंगित किया गया है कि विधानसभा का अधिवेशन बुलाए जाने के दिन, अर्थात्, तारीख 2 सितम्बर, 2003 को बी. एस. पी. के वे 13 सदस्य, जो कि 27 अगस्त, 2003 को राज्यपाल से मिले थे, विधानसभा में समाजवादी

पार्टी के सदस्यों के साथ बैठे थे और इस बारे में आक्षेप किया गया था। अध्यक्ष ने यह कहकर उस स्थिति को टाल दिया कि उस दिन की कार्यसूची के अनुसार केवल श्रद्धांजलि दी जानी थी और उस दिन कोई प्रश्न नहीं उठाया जाना था। इसलिए, यह दलील दी गई कि तथ्यों के आधार पर यह सुस्पष्ट है कि जिन 13 सदस्यों को निरर्हित करने की ईप्सा की गई है उन्होंने दल परिवर्तन किया था और उनके 27 अगस्त, 2003 को राज्यपाल से मिलने और उससे यह अनुरोध करने से कि वह समाजवादी पार्टी के नेता को सरकार बनाने के लिए आमंत्रित करे, उनका दल परिवर्तन करना स्पष्ट हो जाता है।

43. इन निवेदनों के प्रत्युत्तर में यह दलील दी गई है कि प्रथमतः अध्यक्ष को विनिश्चय करना था और इस न्यायालय को अध्यक्ष के विनिश्चय के स्थान पर अपना विनिश्चय नहीं रखना चाहिए। इसलिए यह निवेदन किया गया है कि यदि यह न्यायालय 37 विधायकों के इस मत से सहमत नहीं था कि अध्यक्ष के विनिश्चय में हस्तक्षेप करना आवश्यक नहीं है, तो उच्च न्यायालय द्वारा मामला अध्यक्ष को प्रतिप्रेषित करना न्यायोचित था।

44. साधारणतः, जब संबंधित प्राधिकारी ने विधि की दृष्टि से विनिश्चय न किया हो तब यह न्यायालय प्रथम बार विनिश्चय करने की कार्यवाही नहीं करता और यह न्यायालय सामान्यतः वह मामला प्राधिकारी को विधि के अनुसार समुचित विनिश्चय करने के लिए प्रतिप्रेषित करेगा और यह न्यायालय ऐसा विनिश्चय स्वयं सुसंगत पहलुओं के आधार पर करता है। बहुजन समाज पार्टी की ओर से इस बात पर जोर दिया गया कि इन 37 विधायकों में से कुछ विधायकों को छोड़ कर सभी मंत्री बनाए गए हैं और यदि दल परिवर्तन की तारीख के प्रति निर्देश से उन्हें दल परिवर्तन का दोषी पाया जाता है तो वे लोकतांत्रिक सिद्धांतों की अवज्ञा करते हुए प्राधिकार के बिना पद धारण किए हुए थे और ऐसी स्थिति में इस न्यायालय को निरर्हता के प्रश्न पर शीघ्र विनिश्चय करना चाहिए। यह भी निवेदन किया गया है कि विधानसभा का कार्यकाल समाप्त होने वाला है और सांविधानिक स्कीम और सांविधानिक मूल्यों को संरक्षित करने के लिए इस न्यायालय द्वारा तुरंत विनिश्चय करना आवश्यक है।

45. प्रस्तुत मामले में, 13 विधायकों के निरर्हित होने से संबंधित अभिकथित कार्यवाही 27 अगस्त, 2003 को हुई जब वे राज्यपाल से मिले और उससे विपक्षी दल के नेता को सरकार बनाने के लिए बुलाने का अनुरोध किया। इन 13 विधायकों की उस कार्यवाही के आधार पर उनकी

निरर्हता की ईप्सा करने वाली याचिका को अब तक लटकने दिया गया । हमारे लिए इस बात पर विचार करना या कोई टीका-टिप्पणी करना आवश्यक नहीं है कि इस विलंब के लिए कौन उत्तरदायी था । किन्तु तथ्य यह बचता है कि विधानसभा का कार्यकाल, जिसका गठन फरवरी, 2002 में हुए निर्वाचन के पश्चात् किया गया था, पांच वर्ष के अवसान पर समाप्त होने वाला है । अध्यक्ष को कार्यवाही प्रतिप्रेषित करने या हमारे द्वारा उच्च न्यायालय द्वारा पारित प्रतिप्रेषण आदेश को अभिपुष्ट करने का अर्थ यह होगा कि स्वयं कार्यवाही ही निष्फल हो सकती है । हम अवेक्षा कर सकते हैं कि दसवीं अनुसूची के निर्वचन संबंधी प्रश्न का और इसी राज्य की पूर्व विधानसभा के सदस्यों के संबंध में इससे पूर्व उठाए गए निरर्हता के प्रश्न का, जिसके परिणामस्वरूप इस न्यायालय के दो विद्वान् न्यायाधीशों के बीच मतभेद उत्पन्न हुआ और जिसे संविधान न्यायपीठ को निर्देशित किया गया था, निपटारा इस आधार पर किया गया था कि विधानसभा के कार्यकाल के अवसान के कारण वह प्रश्न निष्फल हो गया है । दसवीं अनुसूची के पैरा 3 का भी संसद् द्वारा लोप कर दिया गया है यद्यपि इस मामले के प्रयोजन के लिए उस पैरा की परिधि अंतर्वलित है । इस बात पर विचार करते हुए कि यदि 13 सदस्यों को निरर्हित पाया जाता है तो उनका एक दिन के लिए भी विधानसभा में बने रहना अवैध और असांविधानिक होगा और कम से कम उनके द्वारा मंत्री पद का कार्यभार संभालने की तारीख से छह मास के अवसान के पश्चात् भी उनके द्वारा मंत्री पद धारित करना अवैध होगा, हम यह समझते हैं कि चूंकि न्यायालय संविधान और उसके मूल्यों और लोकतंत्र के सिद्धांतों को, जो कि संविधान की मूलभूत विशेषता है, संरक्षित करने के लिए बाध्य है इसलिए इस न्यायालय को 13 विधायकों की तारीख 27 अगस्त, 2003 की कार्यवाही के आधार पर और उपलब्ध सामग्री के आधार पर उनकी निरर्हता के प्रश्न पर कोई न कोई विनिश्चय अवश्य करना होगा ।

46. उन 13 विधायकों की ओर से, जो 37 विधायकों में शामिल थे, मुख्यतः इस तर्क पर जोर दिया गया है कि यदि मूल राजनीतिक दल में विभाजन का कोई दावा किया गया था तो वह पर्याप्त था और ऐसे किसी विभाजन को साबित करना आवश्यक नहीं था और उनके लिए यह दर्शाना ही पर्याप्त था कि उनमें से 37 सदस्यों ने अध्यक्ष के समक्ष तारीख 6 सितम्बर, 2003 को फाइल की गई याचिका पर हस्ताक्षर किए थे । हमने

पैरा 3 के निर्वचन के आधार पर और **जगजीत सिंह**[1] वाले मामले के विनिश्चयाधार का अनुमोदन करते हुए यह अभिनिर्धारित किया है कि इससे पूर्व कि 37 विधायक, जिनमें प्रश्नगत 13 विधायक भी शामिल हैं पैरा 3 द्वारा प्रदत्त संरक्षण प्राप्त कर सकें, उन्हें मूल राजनीतिक दल में, जो कि इस मामले में बी. एस. पी. है, विभाजन को साबित करना होगा । प्रश्न यह है कि क्या उन्होंने कम से कम प्रथमदृष्ट्या यह साबित कर दिया है कि ऐसा कोई विभाजन हुआ था ।

47. 13 विधायकों की ओर से की गई पहली कार्यवाही, जो कि सुसंगत है, उनके द्वारा राज्यपाल को पत्र दिया जाना है, जिनकी अंतर्वस्तु हमने इससे पूर्व पैरा 16 में उद्धृत कर दी है । उस पत्र में ऐसा कोई दावा नहीं किया गया है कि 26 अगस्त, 2003 को विधायक दल में कोई विभाजन हो गया था, जैसा कि 37 सदस्यों द्वारा तारीख 6 सितम्बर, 2003 को प्रस्तुत किए गए अभ्यावेदन में कहा गया है । यह उल्लेख करना रोचक है कि राजेन्द्र सिंह राणा द्वारा, जिसे 13 सदस्यों(उस मामले में 37 सदस्यों) का नेता कहा जा सकता है, फाइल की गई रिट याचिका के प्रति-शपथपत्र में बारंबार यह प्राख्यान किया गया है कि तारीख 26 अगस्त, 2003 को लोकतांत्रिक बहुजन दल नामक नए दल का गठन किया गया है । इसलिए, यह एक ऐसा मामला था जिसमें अपीलाधीन निर्णय में विद्वान मुख्य न्यायमूर्ति द्वारा उल्लिखित द्रुत प्रभाव पड़ने का सिद्धांत सुसंगत नहीं है । प्रश्न यह था कि क्या तारीख 26 अगस्त, 2003 को मूल राजनीतिक दल, बी. एस. पी. में कोई विभाजन हुआ था और क्या उस विभाजन द्वारा उस विधायक दल के 37 विधायक उस दल से अलग हो गए थे । जैसा कि बी. एस. पी. के विद्वान काउन्सेल द्वारा ठीक ही उल्लेख किया गया है, यह दर्शित करने के लिए कोई सामग्री प्रस्तुत नहीं की गई है कि बी. एस. पी. के सदस्यों की बैठक 26 अगस्त, 2003 को आयोजित की गई थी या दारुलशफा में कोई बैठक हुई थी, जिसमें मूल राजनीतिक दल में विभाजन हुआ था । दूसरी ओर, उन 13 सदस्यों द्वारा, जिन्हें निरर्हित करने की ईप्सा की गई है, तारीख 27 अगस्त, 2003 को राज्यपाल को दिया गया पत्र मूल राजनीतिक दल में ऐसा कोई विभाजन होने या मूल राजनीतिक दल के कतिपय सदस्यों द्वारा किसी नए दल का गठन किए जाने के बारे में पूर्णतः मौन है । यह निष्कर्ष इस तथ्य से निकलता है कि तारीख 2 सितम्बर, 2003 को केवल वही सदस्य, जो कि राज्यपाल से मिले थे,

---

[1] (2006) 13 स्केल 335.

विधानसभा में बी. एस. पी. के साथ अपने स्थानों का परित्याग करते हुए समाजवादी पार्टी के सदस्यों के साथ बैठे और अन्य 24 सदस्य, जिन्हें मिलाकर वे 37 बने, बी. एस. पी. के साथ अपने-अपने स्थान पर बैठे रहे। इसके अतिरिक्त, तारीख 26 अगस्त, 2003 की प्रस्तावित बैठक की कोई सूचना या ऐसी प्रस्तावित बैठक की किसी प्रकार की घोषणा का भी कोई साक्ष्य पेश नहीं किया गया है। इस प्रकार की किसी बैठक की कार्यसूची भी प्रस्तुत नहीं की गई है। ऐसा कोई कार्यवृत्त भी पेश नहीं किया गया है जिसमें ऐसी बैठक में दल के विभाजन के संबंध में लिए गए किसी विनिश्चय का कोई साक्ष्य हो। इन सुसंगत पहलुओं से स्पष्टतः यह प्रदर्शित होता है कि तारीख 6 सितम्बर, 2003 के पत्र में पेश की गई मूल राजनीतिक दल में विभाजन की कहानी केवल बाद में सोच-विचार कर बनाई गई है। हमारे समक्ष भी ऐसी किसी सामग्री के प्रति निर्देश नहीं किया गया है जिससे यह संकेत मिलता हो या यह साबित होता हो कि तारीख 26 अगस्त, 2003 को कोई विभाजन हुआ था और जैसा कि रिट याचिका में फाइल किए गए प्रति शपथपत्र में दावा किया गया है, लोकतांत्रिक दल का गठन किया गया था। केवल यह तर्क देने का प्रयास किया गया था कि हमें प्रथमतः यह विनिश्चय अध्यक्ष पर छोड़ देना चाहिए और तारीख 26 अगस्त, 2003 को हुई बैठक को चुनौती देने का प्रश्न रिट याचिका में बाद में ही उठाया गया था। मूल रिट याचिका में के अभिवचनों की संवीक्षा करने पर हम उस पश्चात्वर्ती निवेदन से भी सहमत नहीं हो सकते।

48. ऐसा पत्र देने की कार्यवाही ही, जिसमें राज्यपाल से इस बात का अनुरोध किया गया कि वह विपक्षी दल के नेता को सरकार बनाने के लिए आमंत्रित करे, उस दल की, जिसके टिकट पर उक्त सदस्य निर्वाचित हुए थे, सदस्यता को स्वेच्छा से छोड़ने वाली कार्यवाही की कोटि में आएगी। यह उल्लेखनीय है कि 26 अगस्त, 2003 को उनके दल के नेता ने राज्यपाल को विधानसभा का विघटन करने की सिफारिश की थी। प्रथम आठ सदस्य समाजवादी पार्टी के महासचिव शिवपाल सिंह यादव के साथ गए थे। **रवि एस. नायक**[1] वाले उपर्युक्त मामले में इस न्यायालय ने यह मत व्यक्त किया :–

> "कोई व्यक्ति किसी मूल राजनीतिक दल की अपनी सदस्यता स्वेच्छा से छोड़ सकता है भले ही उसने उस दल की सदस्यता से

---

[1] [1994] 1 एस. सी. आर. 754.

अपना त्यागपत्र न दिया हो । सदस्यता से औपचारिक त्यागपत्र के अभाव में भी किसी सदस्य के आचरण से यह अनुमान लगाया जा सकता है कि उसने उस राजनीतिक दल की, जिसका वह सदस्य है, सदस्यता स्वेच्छा से छोड़ दी है ।"

49. स्पष्टतः, अपने मूल दल के मुख्यमंत्री की इस सलाह के विरुद्ध कि विधानसभा का विघटन किया जाए, विरोधी दल समाजवादी पार्टी के महासचिव के साथ राज्यपाल से मिलने और राज्यपाल से यह अनुरोध करते हुए कि उस विपक्षी दल के नेता को सरकार बनाने के लिए आमंत्रित किया जाए, पत्र देने वाले आचरण से यह अप्रतिरोध्य अनुमान निकलता है कि 13 सदस्यों ने स्पष्टतः बी. एस. पी. की अपनी सदस्यता छोड़ दी है । इस बात का पता लगाने के लिए और किसी साक्ष्य या जांच की आवश्यकता नहीं है कि उनकी कार्रवाई दसवीं अनुसूची के पैरा 2(1)(क) के अंतर्गत आती है । इसके बाद, एकमात्र प्रश्न यह है कि क्या उन्होंने कम से कम प्रथमदृष्टया यह दर्शित कर दिया था कि तारीख 26 अगस्त, 2003 को मूल राजनीतिक दल में कोई विभाजन हो गया था और वे कम से कम 24 अन्य सदस्यों के साथ उस दल से अलग हो गए थे जिससे कि विधायक दल की एक-तिहाई संख्या पूरी हो जाए ।

50. विद्वान मुख्य न्यायमूर्ति ने, जिन्होंने अध्यक्ष द्वारा संविधान की दसवीं अनुसूची के पैरा 2 और पैरा 3 के निर्वचन के संबंध में दिए गए विनिश्चय में हस्तक्षेप करने से इनकार कर दिया, जिससे हमने असहमति व्यक्त की है, स्वयं यह कथन किया:—

> "नायक [(1994) सप्ली. 2 एस. सी. सी. 641] वाले मामले में किए गए आदेश के अनुसार 13 विधायकों का तारीख 27 अगस्त, 2003 को राज्यपाल के पास जाना एक ऐसा आचरण है जिसके परिणामस्वरूप यह निष्कर्ष निकलता है कि उन्होंने बहुजन दल की अपनी सदस्यता स्वेच्छा से छोड़ दी थी । उन्होंने राज्यपाल से कहा कि मुख्य विरोधी दल के नेता को बुलाया जाए और उसे अपनी सदस्य संख्या प्रदर्शित करने के लिए कहा जाए । नायक वाले मामले में दिए गए निर्णय के पैरा 11 में यह कहा गया है कि किसी सदस्य के आचरण से यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि उसने अपनी सदस्यता स्वेच्छा से छोड़ दी है । वह निष्कर्ष निश्चित रूप से तारीख 27 अगस्त, 2003 के आचरण के बारे में निकाला जाना है ।"

उसने इस बात पर विचार करते समय कि क्या अध्यक्ष को पहले दसवीं अनुसूची के पैरा 2 पर विचार करना था या पहले पैरा 3 पर विचार करना था, यह भी मत व्यक्त किया :–

"विचार करने के क्रम से बिल्कुल विपरीत परिणाम निकलेंगे । इस मामले में भी, यदि उसने पहले पैरा 2 के आधार पर विचार किया होता तो उसने सभी 37 विधायकों को निरर्हित कर दिया होता क्योंकि वे एक साथ और एक ही समय में पृथक् नहीं हुए थे । किन्तु इस कारण कि उसने पहले पैरा 3 के आधार पर विचार किया था क्योंकि उसने विधि की दृष्टि से यह सोचा कि पैरा 3 की अपेक्षाएं पूरी हो रही हैं इससे संपूर्ण समूह के किसी भाग के लिए पृथक् से पैरा 2 के आधार पर विचार करने की आवश्यकता का निवारण हो गया और उसने प्रत्यर्थियों के पक्ष में विनिश्चय किया ।"

विद्वान मुख्य न्यायमूर्ति ने इसके आगे यह अभिनिर्धारित किया :–

"भले ही बहुजन समाज पार्टी के 109 विधायकों में से 37 विधायक दल छोड़ कर चले गए हैं तो भी केवल विधायक दल का विभाजन हुआ है । इसे पैरा 1(ख) में परिभाषित किया गया है जिसे पहले उपवर्णित किया गया है किन्तु हमारे समक्ष इस मामले में अध्यक्ष के समक्ष मूल दल के विभाजन का सबूत कहां है ? क्या अध्यक्ष के समक्ष ऐसा कोई कार्यवृत्त प्रस्तुत किया गया था जिससे यह दर्शित होता हो कि मूल बहुजन दल के इतने लाख सदस्यों ने विभाजित होने का विनिश्चय किया है ? यह दावा पर्याप्त नहीं है कि तारीख 26 अगस्त, 2003 को लखनऊ के दारुलशफा में विधायकों के साथ दल के कुछ सदस्य भी थे ; यह अत्यंत अपर्याप्त है । बहुजन दल काफी बड़ा दल है, इस दल की सदस्य-संख्या इतनी अधिक है कि ऐसी सापेक्ष छोटी बैठक में, भले ही वह 26 अगस्त, 2003 को हुई हो, विभाजन होना संभव नहीं है । इस संबंध में कोई सूचना नहीं थी कि एक समूह अलग हो रहा है ; लोकतांत्रिक बहुजन दल का नाम भी पहली बार 6 सितम्बर, 2003 को कागजों पर आया समाचारपत्रों की कोई रिपोर्ट नहीं थी, दल के असंतुष्ट सदस्यों का कोई कथन नहीं था बहुजन दल के कोर को अपने आचरण में सुधार लाने या अन्यथा कोई अनुरोध नहीं किया गया था । विभाजन की धमकी को आसन्न नहीं बनाया गया था ; ऐसा कुछ भी नहीं हुआ ; केवल एक शाम यह दावा

किया जाता है कि बहुजन दल का विभाजन हो गया है और एक गुट अलग हो गया है । यह इतना सरसरी है कि इसे मूल दल में किसी भी प्रकार के विभाजन के रूप में वर्गीकृत नहीं किया जा सकता । कांग्रेस-ओ में हुए विभाजन पर दृष्टि डाली जा सकती है जिसके परिणामस्वरूप कांग्रेस-आई बनी । पश्चिमी बंगाल में कांग्रेस-आई में हुए विभाजन और इसके परिणामस्वरूप तृणमूल कांग्रेस के अस्तित्व में आने पर दृष्टि डाली जाए तो क्या वहां ऐसा कुछ हुआ था ? इसका उत्तर पूर्णतः ना है ।"

51. विद्वान न्यायाधीशों में से एक ने, जो बहुमत में शामिल थे, यह अभिनिर्धारित किया :-

"......किन्तु न्यायालय निश्चित रूप से इस तथ्य को अनदेखा नहीं कर सकता कि यदि तारीख 4 सितम्बर, 2003 के निरर्हता संबंधी आवेदन पर उसी तत्परता और सांविधानिक रूप से अपेक्षित आवश्यकता के साथ विचार किया गया होता तो उन 13 विधायकों की गणना, जिनकी प्रश्नगत सदस्यता लटकी हुई थी, उन 24 अन्य विधायकों के साथ नहीं की जा सकती थी जो न्यूनतम अपेक्षित सदस्य-संख्या की कल्पना करने के लिए उनके साथ जा मिले ....।"

52. जैसा कि हमने उपदर्शित किया है, यह दर्शित करने के लिए कुछ भी प्रस्तुत नहीं किया गया है कि तारीख 26 अगस्त, 2003 को मूल राजनीतिक दल में विभाजन हुआ था जैसा कि विलंब से आवेदन किया गया या बाद के प्रक्रम पर आवेदन किया गया । किन्तु फिर भी अभिवाक् यह था कि विभाजन 26 अगस्त, 2003 को हुआ । मामले की परिस्थितियों में, सामग्री के आधार पर एकमात्र संभव अनुमान यह है कि इसे भले ही प्रथमदृष्टया, निरर्हित किए जाने के लिए ईप्सित विधायकों द्वारा साबित नहीं किया गया है कि जैसा कि उनके द्वारा दावा किया गया है, मूल राजनीतिक दल में तारीख 26 अगस्त, 2003 को कोई विभाजन हुआ था । इसका आवश्यक परिणाम यह होगा कि वे 24 सदस्य भी, जो बाद में 13 सदस्यों के साथ शामिल हुए, यह साबित नहीं कर सके कि मूल राजनीतिक दल में 26 अगस्त, 2003 को कोई विभाजन हुआ था । वस्तुतः, 26 अगस्त, 2003 को 37 विधायकों का ऐसा कोई विभाजन साबित नहीं किया गया है । विद्वान मुख्य न्यायमूर्ति द्वारा भी अपीलाधीन निर्णय में ठीक ही यह निष्कर्ष निकाला गया था ।

2007(2) eILR(PAT) SC 1

53. हमारे इस निष्कर्ष को ध्यान में रखते हुए कि न केवल यह दर्शित करना आवश्यक है कि 37 विधायक पृथक् हो गए थे बल्कि यह दर्शित करना भी आवश्यक है कि मूल राजनीतिक दल में विभाजन हुआ था, उपर्युक्त निष्कर्ष के परिणामस्वरूप आवश्यक रूप से यह निष्कर्ष निकलता है कि उन 13 विधायकों ने, जिन्हें निरर्हित करने की ईप्सा की गई है, अपनी प्रतिरक्षा साबित नहीं की थी या दसवीं अनुसूची के पैरा 3 के आधार पर पैरा 2 के अधीन दल परिवर्तन के आरोप का उत्तर नहीं दिया था । इसलिए 13 विधायक 27 अगस्त, 2003 से निरर्हित माने जाते हैं । उनके द्वारा राज्यपाल को मात्र यह पत्र देना, जिसमें उससे यह अनुरोध किया गया कि विपक्षी दल के नेता को सरकार बनाने के लिए आमंत्रित किया जाए, दसवीं अनुसूची के पैरा 2 के अर्थान्तर्गत मूल राजनीतिक दल की अपनी सदस्यता स्वेच्छा से छोड़ देने की कोटि में आता है । यदि ऐसा है, तो यह अप्रतिरोध्य निष्कर्ष निकलता है कि बी. एस. पी. के वे 13 सदस्य, जो तारीख 27 अगस्त, 2003 को राज्यपाल से मिले थे और जो मौर्य द्वारा फाइल की गई रिट याचिका में प्रत्यर्थी सं. 2, 3, 4, 5, 6, 9, 10, 14, 16, 19, 20, 21 और 37 हैं, संविधान की दसवीं अनुसूची के पैरा 2 के साथ पठित उसके अनुच्छेद 191(2) के निबंधनों के अनुसार 27 अगस्त, 2003 से निरर्हित हो जाते हैं । यदि ऐसा है, तो खंड न्यायपीठ के बहुमत के विनिश्चय को उपांतरित करके 37 विधायकों द्वारा फाइल की गई अपीलों को खारिज करने के साथ-साथ रिट याची द्वारा फाइल की गई अपील मंजूर की जानी चाहिए । अतः, उच्च न्यायालय में फाइल की गई रिट याचिका इस घोषणा के साथ मंजूर की जाती है कि वे 13 सदस्य जो तारीख 27 अगस्त, 2003 को राज्यपाल से मिले थे और जो रिट याचिका में प्रत्यर्थी सं. 2, 3, 4, 5, 6, 9, 10, 14, 16, 19, 20, 21 और 37 हैं, उत्तर प्रदेश विधानसभा से तारीख 27 अगस्त, 2003 से निरर्हित माने जाते हैं ।

54. 37 विधायकों द्वारा फाइल की गई अपीलें खारिज की जाती हैं और रिट याची द्वारा फाइल की गई अपील उपर्युक्त रीति में मंजूर की जाती हैं । निरर्हित सदस्य रिट याची को इस न्यायालय में और उच्च न्यायालय में खर्चे का संदाय करेंगे ।

अपीलें खारिज की गईं ।

ग्रो. /अनू.